ऐसा ही...कुछ भी

हिन्दी ADDA

नीलाक्षी सिंह

ऐसा ही...कुछ भी

लड़की गहरी साँवली थी। एक दिन अपने साँवलेपन से आजिज आकर वह तीन हफ्ते में गोरेपन का दावा करने वाली एक फेयरनेस क्रीम बाजार से ले आयी। हालाँकि वह तीस हफ्ते तक इंतजार कर सकने के धैर्य से उसे लेकर आयी थी, पर हुआ ये कि पहले हफ्ते के आखिर में ही उसकी त्वचा कुछ निखर गयी। बात यहीं से शुरू होती

https://www.hindiadda.com/aisa-hi-kuchh-bhi/

है। उसे लगने लगा कि जिंदगी को अब वह उसके पूरे चटक के साथ जी सकती है। उसकी झूठ की रफ्तार में दुगुनी उछाल आ गयी। पहले जहाँ उसकी दस में से चार बातें झूठ हुआ करती थीं, अब मात्र एक या दो सही हुआ करतीं। मसलन अगले दिन फिजिक्स का एक्जाम होता तो वह इजा को और अपने ऊँचे कंधे वाले ट्यूटर को बताती कि परीक्षा अंग्रेजी की है। वह पढ़ कर भी अंग्रेजी ही जाती अपने ट्यूटर से और हिसाब चुकता करने के लिए अंग्रेजी वाले दिन फिजिक्स पढ़ लेती। नंबर जाहिर है राम भरोसे आते और वह ट्यूटर और इजा के सामने अगली दफे खूब मेहनत करने के अनकहे वादे वाला गंभीर चेहरा बनाती, जिसका कि असर एक उसके सिवा बाकी सब पर होता।

इवा कार्णिक की त्वचा तैलीय थी। सब जगह। खाली होंठों के ऊपर और नीचे के हिस्से को छोड़ कर। गैर तैलीय हिस्सा हवा के जरा सा ससरने भर से अकड़ जाता था। तो ऐसे में इवा कार्णिक को दौड़ दौड़ कर आईना देखना पड़ता इस शुबहा से भर कर कि मूँछें तो नहीं उग आयीं। एक बार फिर। मूँछें अलग से उगती तो नहीं थीं पर होंठ के ऊपर के नीले नीले बाल, जो अमूमन अपनी महीनता में अदृश्य रहते, उन दिनों अपने को अकड़ा कर और एक दूसरे से चिपक कर एक पतली नीली लकीर खींच देते होंठों के ठीक ऊपर। और आगे ये कि होंठ हिलाना, बोलना, मुस्कुराना, ठहाके मारना सब छनछनाहट भरा। चिपचिपा घरेलू लेप प्रलेप ताबड़तोड़ लगा कर उस जगह को वापस से मुलायम बनाने में दो तीन दिन का वक्त लग जाता और इवा कार्णिक फिर से लड़की बन जाती।

इसी लड़की छाप दिनों की खाली शाम कही जा सकने वाली शाम। इवा कार्णिक, कक्षा दस, जिसकी कि दायीं चोटी थोड़ी ज्यादा नीचे तक झूलती रहती थी, जल्दी जल्दी पेन्सिल की नोंक को महीन करने में जुटी थी, जबकि ऊँचे कंधे वाला आदमी कमरे में घुसा। इवा कार्णिक को रटे रटाये स्वर में उठ कर खड़े हो जाना था और फिर दूसरे पल बिना किसी की इजाजत लिए वापस बैठ भी जाना था।

वह उसका ट्यूटर था। मास्टर वगैरह शब्द प्रचलन में नहीं तो सीधे सर, जो प्रतिमाह दो हजार रुपये, लिफाफे में डाले हुए, पाया करता था, बतौर पारिश्रमिक। और इवा कार्णिक इस लिफाफा सुपुर्दगी के संभावित वक्त अपने को कमरे से अनुपस्थित कर लिया करती थी। वह एक सख्त ट्यूटर था। कुछ चीजें उसे हद तक नापसंद थीं, जो इवा कार्णिक को मुँहजबानी याद थीं। उन दो घंटों में उसे अकड़ी हुई गरदन को उठा कर अकड़ भगाने तक की सहूलियत नहीं मिलती। जिन सवालों के जवाब उसे पक्का

मालूम होते, उन्हें वह फुसफुसा कर बोलती। जिन जगहों का ठिकाना पक्का पता होता उन पर बस पेन्सिल टिका कर काम चला लेती। यानी कि गैर तैलीय त्वचा पर अगर हल्की मूँछों का मौसम हो तो, एक बार भी छनछनाहट नहीं होती। क्योंकि न हिलाना न बोलना न मुस्कुराना ठहाके मारने का तो सवाल ही क्या!

आखिर के पंद्रह मिनट संरक्षित थे उसके हिस्से के। उसके सवाल पूछने का वक्त। उस दिन के पढ़ाये पाठ से। इवा कार्णिक के लिए यह दिन के सबसे मुश्किल पंद्रह मिनट होते। उसकी हालत एक ऐसे आदमी की हो जाती, जिसके कि हाथों में स्टेज की कठपुतलियों की सारी डोरियाँ थमा दी गयी हों अचानक से कुछ देर के लिए और उतनी ही देर में उसे अपनी योग्यता साबित भी करनी हो, जबकि अंदर की बात कि कौन सी डोर के खिंच जाने से कौन सी चीज कितनी लचक जायेगी, उसे ये तक न पता हो। दिमाग का पिछला हिस्सा इसी समय चमत्कार कर जाता और उसे तीन चार दिन पहले का पढ़ाया कुछ याद आ जाता। यही वजह कि भूगोल पढ़ा चुकने के बाद के मुकर्रर वक्त में वह अक्सर रसायन का कोई उलझा सा सवाल पूछती। यह उलझी चीज एक बात तो एकदम साफ कर देती कि पढ़ाये जाने वक्त भले उसे ऐसा लगता हो कि वह कुछ भी नहीं सुन पा रही, पर वह सुन सब लेती थी। वरना क्या संभव कि तीन चार दिन देर से ही सही बिना सुन रखा कुछ इतनी शिद्दत के साथ उपस्थित हो जाये प्रश्नवाचक चिह्न को अपने पीछे टाँगे टाँगे! सब कुछ ऐसा रटा रटाया सा कि बिना हैरत भाव, भूगोल की कक्षा के बाद उसे रसायन का खोया हुआ जवाब बदले में मिल भी जाता था बगल वाले से।

जवाब को सुनते हुए वह अपने पूछे गये सवाल को समझने की कोशिश करती होती कि एक सुखद समाचार की तरह घड़ी की सबसे पतली सूई हाँफती हुई उसे अपने पंद्रह चक्कर लगा चुकने की सूचना दे देती और वह उठ खड़ी होती। यह वक्त होता जब उसके बगल का सख्त आदमी ड्राइंगरूम में ही पार्टिशन के उस पार सोफे वाले इलाके की ओर चला जाता और वह पलट कर भीतर सुरंग की तरफ चली आती।

इजा कहलाने वाली स्त्री सफेद रंग के शिकंजे में पूरी तरह से कैद कही जा सकती थी। उसकी उम्र, उसके बाल, उसके कपड़े, उसकी हरकतें। वह बगैर इस्तरी और कलफ की साड़ियों को हाथ तक नहीं लगाती थी। उसका ज्यादा वक्त सोफा कवर को पीछे की तरफ खींचने, टीवी कवर की चेन बंद करने, फूलदान की पीली पत्तियों को कतरने और किसी हड़बड़िया पाँव के धक्के से मुड़ गयी कालीन को वापस फैलाने में

बीतता था। उसके घर की बाइयों में टिकाऊपने का अभाव रहता। हफ्ता दो दिन के आगे कोई भी चल नहीं पाती। फर्श के कोने कोने से धब्बों को बीन बीन कर रगड़वाना, लोहे के बरतनों को अपनी निगरानी में चमकवाना, इसके मूल में था। खैर फिक्र क्या! एक बाई के विदा लेने और दूसरे के आने के बीच के दिनों में भी घर को कमी महसूस नहीं होने पाती कुछ भी, क्योंकि हर प्रकार के काम की मुस्तैद कमान वह अपने हाथ में सँभाल लेती।

हालाँकि उसने दुनिया देखने की शुरुआत अपने पति की देखरेख में एक ग्लोब पर भारत के नक्शे के ऊपर उँगली टिका देने से की थी, पर अब वह इस दुनियादेखी में इतना आगे निकल चुकी थी कि सामने वाले, बगल वाले और पीछे वाले शामिलद्ध को चुटकी भर में परख कर दूध से पानी को अलगा देती।

पाँच रुपये के पत्तर वाली काली हेयर पिन और चार रुपये के गुच्छे वाला सेफ्टीपिन उसके सबसे खास औजार थे। नहाने धुलने के बाद से साड़ी का पल्लू तहा कर जो सेफ्टीपिन के तार खाँचे में फिट होते, फिर अगले दिन नहाने के पहले ही अलग हो पाते। यही स्वामिभक्ति हेयरपिन की भी। यहाँ तक कि रात को उसके सो चुकने पर भी वे दोनों अपनी ड्यूटी निभाते जाते।

उसकी आँखों का रंग भूरा था और उसी से मेल खाता गार्नियर के चार नंबर का ब्राउन शेड अपने बालों पर लगा कर वह सफेदी के ऊपर सुनहरे भूरे रंग का जिल्द चढ़ाये रखती थी। उसकी चौकसी को देख कर कहा जा सकता था कि उसे किसी महत्वपूर्ण चीज के होने का इंतजार था और उसे अहसास था कि किसी भी पल उसके अपने दरवाजे पर दस्तक हो सकती थी। पर चूँकि उसने नियति की दस्तक सुनी नहीं थी, वह केवल कल्पना कर सकती थी उसके वैसा होने की, जैसी कि वह सच में होती। आँखें मूँद कर आरामकुर्सी पर बैठे रहने पर भी बाकी की दस्तक को सुन कर वह पहचान कर सकती थी कि किस बार दरवाजा खोलने पर सामने कौन दिखेगा! कौन सी थाप दूधवाले की, कौन अखबारवाले की, कौन नाई की, कौन इवा कार्णिक की, कौन ऊँचे कंधे वाले आदमी की। और यह, सच कहें तो उसका दिलचस्प मनबहलाब भी था। हर बार हाथ की थाप पर पहचान करना और दरवाजा खोल कर अपने को सही साबित होते देखना और फिर से दूसरी थाप का इंतजार करना। वजह यही कि आज तक उसके घर के दरवाजे के बायें या दायें कहीं भी कॉलबेल को जगह नहीं मिल पायी थी।

ऊँचे कंधे वाले आदमी का दुनियावी नाम विक्रम आहूजा था। उस घर में आते जाते उसका माथा घर के दरवाजे के ऊपरी हिस्से से छू जाता था। एक, दरवाजों की ऊँचाई कम थी और दूसरे हर दरवाजे के नीचे टखनों की ऊँचाई के चौखट बने थे। और इन सबसे ऊपर उसका आसमानी कद। वह हमेशा दौड़ने के वक्त पहने जाने वाले सफेद जूते पहनता। उसके चलने, बोलने ओर साँस लेने में एक खास किस्म की जिद थी।

उसके अतीत पर दो प्रेमिकाओं की छाप थी। पहला प्रेम शुरुआती गुनगुनाहट जितना था। गौरी करमाकर। एक कॉलेज, एक क्लास, एक विषय, एक रास्ता घर का - वाले किस्म का। उसमें एक दूसरे प्रायद्वीप पर उतरने का रोमांच था। वह मटर की फलियों को विलगाने जैसा था - बहुत मीठे श्रम की अपेक्षा वाला। वाक्या पंखुड़ी के खिलने जैसा था, जिसका खिलना कोई देख न पाये। ठीक वैसे ही उसका मुरझाना भी फूल के मुरझाने जैसा, जिसके मुरझाने का कोई हवाला नहीं दिया जा सके, बस एकबारगी दुनिया को खबर मिले कि फूल मुरझा चुका, या कि खबर न भी मिले।

दूसरा कुछ बरस की करवटों के बाद। एक दिन गहरे शाम के वक्त, जब दफ्तर लगभग खाली हो चुका था, एक बेतरह उजली चमड़ी की लड़की लाल लाल सी हुई उसके पास आयी। उसके कंप्यूटर की सारी सूचनाएँ करप्ट हो चुकी थीं और बैकअप भी मौजूद नहीं था। दफ्तर में किसी प्रोजेक्ट के सिलसिले में दो लड़कियाँ आयी थीं। एक की चमड़ी देशी थी, दूसरी ये - विदेशी मूल वाली। विक्रम आहूजा के साथ किस्मत थी उस शाम। पच्चीस मिनट तक की अंधाधुंध माथापच्ची के बाद उसने वह कर दिखाया जिसकी उम्मीद उसे भी नहीं थी। लड़की की चमड़ी वापस खूब उजली हो चुकी और लाल रंग छँट गया था।

उस शाम के बाद से उनकी पहली दो मुलाकातें विशुद्धतः लड़की की पहल पर हुईं। एक उसके ठीक अगले दिन जब वह इत्मीनान से उसका शुक्रिया अदा करने आयी और दूसरी काम पूरा करके लौटने की पूर्व संध्या पर जब वह अपना काम दिखाने और औपचारिक इजाजत लेने आयी। उसके बाद की मुलाकातों में कुछ राज खुले। लड़की आयरिश थी और होंठों को घुमा घुमा कर हिंदी बोलती थी। जब वह बेलौस बोलती तो शब्द छितरा कर निकलते और जब सचेत होकर बोलती तो शब्द एक दूसरे के ऊपर चढ़ने लगते। उसे अपने समाज की जर्जर रहस्यमयी लोककथाएँ याद थीं। हालाँकि उसके वाक्दोष पर ध्यान दिया जाये तो कथाओं में रहस्य की जगह हास्य झाँकता मिलता पर उसकी हल्के रंग की पलकों वाली आँखों की गोलाई को ही

दुनिया का आखिरी सच मान कर चले कोई तो रहस्य और रोमांस बस। बाकी सब झूठ।

चर्च में जलती कैंडिल को आधार पर टिकाते हुए वह अपनी भाषा में सरपट बुदबुदाती कुछ, बाद में जिसका मतलब पूछे जाने पर वह गालों में गड्ढ़े धँसा कर मुस्कुरा देती बस। जिंदगी को बिना छुए हुए ही वह हलचल मचाने का ढब जानती थी। उछल कर मंदिर की घंटिया बजाते हुए, पानीपूरी के तीखेपन के बीच लाल गाल से सिसकारियाँ लेते हुए, बरसात में सड़क किनारे जमा हुए पानी में जान बूझ कर सैंडिल छपकाते हुए तरंग पैदा करने की उसकी क्षमता को महसूसा जा सकता था। वह सुनते हुए कभी ऊबती नहीं थी। उसे दूसरों को माफ करने का भयानक चस्का था। वह हर काम मुस्कुरा कर करती थी चाहे वह पहली शाम मदद माँगने की बात हो या कि आखिरी शाम अपना प्रोजेक्ट पूरी तरह खत्म हो चुकने पर अपने देश वापस लौटने की बात हो। जवाब में विक्रम आहूजा भी मुस्कुराया। उसे लगा कि बादल के एक गुच्छे को कुछ समय के लिए ही सही, उसने छू लिया था।

इवा कार्णिक को अपने बालों से बड़ी शिकायत थी। कंधे तक सीधे चल कर वे नीचे छल्लों में उलझ गये थे। शायद इसकी वजह ये कि स्कूल में उसे गूँथ गूँथ कर दो चोटियाँ बनानी होतीं जो स्कूल जाने की हड़बड़ी में अक्सर टेढ़ी मेढ़ी बनतीं। घर लौटते ही सबसे पहले वह उन्हें खोल देती और आजाद बालों के साथ शाम के वक्त पढ़ने जाती। पर होता यह कि जैसे ही वह किताब पर आगे की तरफ झुक कर समझने का खेल शुरू करती, बाल धड़धड़ा कर आगे झूल जाते। वह उन्हें समेट समेट कर कान पर टिकाती पर उसके हाथ अभी वापसी के रास्ते में ही होते कि बाल ढुलक जाते दुबारा से। बालों की सबसे लंबी लट लड़खड़ाते हुए किताब के उस छोर दूर वाले दूसरे पन्ने पर लहराने लगती। ऊँचे कंधे वाला आदमी अपनी गरदन उठाता उसकी तरफ और इवा कार्णिक का इधर उधर डोलता दिल उछल कर अपनी जगह पर आ जाता, एक पुरजोर डाँट की आशंका में। विक्रम आहूजा होंठ अलगाने के तुरंत बाद अपना निर्णय बदल लेता और लड़की को बिना डाँट खाये रह जाना पड़ता।

ट्यूटर समझता था कि उसके बगल की लड़की खाली ढोंग करती है समझने का और जबकि उसे उसके इस ढोंग से भयानक विरक्ति होती थी, वह समझ नहीं पाता कि वह क्यों नहीं डाँट पाता उसे। वह अगर बीच से कोई सवाल कर देता तो लडकी भौंहें तिरछी करके अं अं करके कुछ याद करने की कोशिश करने लगती। वह पढ़ाते वक्त

रोज तय करता कि आज पार्टिशन के उस तरफ जाने के बाद वह वसुंधरा कार्णिक से लड़की की शिकायत कर देगा और अगले दिन से न आ पाने की माफी माँग लेगा। वह भूमिका भी डालता इस बात की पर चुस्त दुरुस्त वसुंधरा कार्णिक बतौर दादी इतनी असुरक्षित थी कि शिकायत तो वह शायद कर भी देता पर आगे न आने की बात नहीं कह पाता। और जब न आने की बात ही नहीं हो पाती तो शिकायत का फायदा क्या!

उसे शक था कि लड़की उसके इस द्वंद्व को समझती थी। इसी वजह उसने अपने आप को भरपूर इतराने की छूट दे रखी थी। पढ़ाते पढ़ाते अचानक से ऊँचे कंधे वाले आदमी का ध्यान बगल वाली की तरफ जाता तो वह उस वक्त उसे ध्यान से सुन रही दिखती पर लड़की के हाथों पर नजर जाते ही भ्रम की झिल्ली गिर जाती और उसका एक छोटे कागज को चिंदी चिंदी फाड़ने में ध्यानरत होना प्रकाश में आ जाता। ट्यूटर की नजर पड़ते ही वह फाड़ रहे अपने हाथों को जहाँ का तहाँ रोक देती।

आधे फटे हुए पूरे फटे हुए कागज के छोटे छोटे टुकड़े सोफे पर अपनी बगल में रखे जाते समान भाव से। उसका मन तेज तेज दौड़ रहा होता पर बाकी के अपने पूरे शरीर पर उसका कड़ा नियंत्रण था और वे मन के विपरीत अपने को स्थिर रख पाते थे। चूँकि दाहिना तलवा इस 'पूरे शरीर' की सीमा में नहीं आता था, इसीलिए पूरा शरीर अपने को किताब के पन्ने पर केंद्रित कर देता और दाहिना तलवा मन की गति से हिलता जाता था थरथराने की लय में। बीच बीच में अर्धविराम की हैसियत से सोफे पर इवा कार्णिक के बगल की एक चिंदी उड़ने लगती हवा के झोंके में और तब अपने पूरे शरीर से लड़की का नियंत्रण हट जाता और वह चिंदी के उड़ियाने से लेकर एक कोने में जा दुबकने का पूरा खेल पलकें फड़फड़ा कर देख लेती। विक्रम आहूजा सोचता था कि अगर वह लड़की दो तीन साल और छोटी होती तो वह उसे पाँच भरपूर उँगलियों वाला एक तमाचा मार सकता था, इस फ्रस्टेशन के बाद।

स्कूल में प्रीबोर्ड के नतीजों के बाद की गार्जियन मीट। लड़की का अभिभावक बन कर उसे उपस्थित होना था, ये बात एक शाम पहले उद्घाटित की गयी थी। वसुंधरा कार्णिक ने एक प्रस्ताव रखा था, जो उत्तरार्ध में याचना की तरलता से फैल गया। वह हाँ या ना कुछ भी करने में अपने को असमर्थ पा रहा था। उसके पास एक ही घिसी पिटी दलील थी - अभिभावकों के समूह में उसकी क्या जगह! वसुंधरा कार्णिक जैसी

कि एक चुस्त दुरुस्त महिला थी, विद्यालय से पहले ही अपनी अस्वस्थता के कारण अपनी जगह उसे भेजने की इजाजत ले चुकी थी। उससे अब और बैठा नहीं गया।

वह अनुमति लेकर घर के दरवाजे पर झुका जूते पहन रहा था कि धरती पर गिरे बूँद की तेजी से इवा कार्णिक हाजिर हो गयी। हाँफने के अंदाज में। अगले दिन उसे पहुँचने के समय की सूचना देती हुई। उसने जूते के फीते बाँधते हुए सिर झुकाये सुना। उठते ही उसकी आँखों के ठीक सामने उसकी आँखों के आकार की एक जोड़ी आँखें आ गयीं। इवा कार्णिक ने फुसफुसा कर कहा - 'ब्लू शर्ट और ब्लैक जींस पहन कर आइयेगा' - बगैर पलक झपकाये। ऊँचे कंधे वाले आदमी की पलकें झपकी थीं। लड़की जा चुकी थी।

स्कूल के फाटक के भीतर घुसना पहली नजर में अपने अतीत में दाखिल होने सरीखा था। कतार में लगी साइकिलें, एक कंधे पर बेपरवाही से टंगे बैग्स, चेक के ग्रे स्कर्ट्स और ग्रे फुलपैंटों में बँटी दुनिया। हर हरकत का घंटियों का मुहताज होकर रह जाना, वही परीक्षाओं की तलवार, वही पनिशमेंट्स की बहार। एक पीढ़ी बदल गयी और स्कूल के फाटक के भीतर कलकल बहते जीवन के बीच भी वक्त वहीं रुका रह गया कहीं। उसका मन हुआ कि वह एक हाथ बढ़ा कर छू ले किसी बस्ते का कोर ही या किसी ग्रे फुलपैंट की दाहिनी जेब में उँगलियाँ ही सरका दे। पर एक गुनगुनाहट भर दूरी थी।

उनकी हँसी की खनखनाहट में एक कोड वर्ड छिपा था। उनकी बोली के हिज्जे में किसी को अपने घेरे के भीतर न घुसने देने की जिद छिपी थी। उनकी उँगली नचा नचा कर बोलने की अदा दरअसल एक निशान खींच दे रही थी, अपने को दूसरों से अलगाने के लिए। विक्रम आहूजा को बहुत तेज अहसास हुआ कि वक्त रुका भले रह गया हो पर उसकी शक्ल बदल चुकी थी।

अंदर तीन टुकड़ों में बँटी कुर्सियाँ थीं। सामने की सबसे विरल, अध्यापकों के लिए थीं। सामने का दो घेरा। एक में बच्चे। एक पेरेंट्स का कुनबा, जो सबसे घना था। कमरे में उजाले का बँटवारा ऐसा था कि एक खास जगह के हिस्से में तेज रोशनी का घेरा आया था, जिसके कि दायरे में एक एक कर हर बच्चे को अपनी बारी आने पर खड़ा होना था। सामने का विरल घेरा उसके हासिल किये गये अंकों और पढ़ायी लिखायी के उसके प्रदर्शन पर टिप्पणी आरंभ कर देता और घने कुनबे के तीन चार सदस्यों से, जो बच्चे के माता पिता या भाई बहन कुछ भी हो सकते थे, मुखातिब हो जाता।

इवा कार्णिक अपनी बारी आने पर कुर्सी से उठी और अलसाये चूहे की रफ्तार से घेरे तक पहुँची। घेरे के बीचोंबीच पहुँच कर पहली हरकत जो उसके मन में हुई, वह दरअसल शुबहा थी। अंदेशा। बल्कि उसे ऐसा पक्का लगा कि उसका दाहिना मोजा सरक चुका था नीचे की तरफ। जूते के बिल्कुल पास सिमटा हुआ। यह एक निहायत ही ट्रैजिक कल्पना थी। रोशनी से चुंधियाने वाले की न सिर्फ दोनों चोटियाँ टेढ़ी मेढ़ी थीं, बल्कि एक मोजा भी एकदम नीचे तक सरका हुआ था। उसकी पनियाई सी मुट्ठी खुली। कमरा बहुत ठंडा था। इतना कि जिस घुटने का मोजा नीचे सरक चुका था, उसके मोजे के भीतर से तुरंत तुरंत उघड़े दायें पैर के रोयें खड़े हो गये। उसकी आँखों के आगे से उजाला धुल गया। उसकी पुतलियों ने एक बार सारी ताकत बटोर कर नीले रंग को तलाशने की चेष्टा की पर उजाले की अनुपस्थिति में नीला रंग काले रंग में घुल कर दम तोड़ चुका था।

गोरेपन की क्रीम लगाते हुए ये तीसरा हफ्ता चढ़ा था। या कि उसका या घेरे का कमाल लड़की बहुत सफेद दिख रही थी। हालाँकि उसमें भय की मात्रा नहीं थी। उसने जो हासिल किया था, उसका अंकों में अनुवाद किया जाय तो अर्जित बहुत कम बचता था। अलग अलग विषयों के अंक उछल कर एक दूसरे के खाने में चले गये थे। गणित का अंक समाजशास्त्र में, केमेस्ट्री के नंबर इकॉनामिक्स में। पर सबका जमा ये कि एक दूसरे के खाने में पड़े भले, पर अंक सारे कमजोर थे। टीचरों की सुनें तो उन्हें पूरा यकीन था कि थोड़ी सी तत्परता अगर वह दिखाये तो वह अच्छा कर सकती है।

यह एक ऐसा अटूट विश्वास था जोकि पिछले कई वर्षों से टीचर्स उस पर दिखाती आयी थीं एकतरफा और जिसमें कि खुद लड़की की कोई भागीदारी नहीं थी। उसके शरीर में कोई हरकत नहीं हुई सिवाय साँसों की दो एक लंबी आवाजों के, जो चार उँगली की दूरी पर फिट किये हुए माइक से, जिससे कि बच्चों को मैं पूरी कोशिश करूँगी/करूँगा कि अपने टीचरों की उम्मीद पर खड़ा उतर सकूँ या कि मैं अपनी कमियों को दूर करने का प्रयास करूँगा/करूँगी बोलना था, रिस कर आयी थीं। उसने बेआवाज गरदन में हल्की सी तरंग पैदा कर अपनी पारी के बोले जाने की रस्म निभा दी।

अब बोलने की बारी ऊँचे कंधे वाले आदमी की थी, जिसे रीति के मुताबिक बोलने की आड़ में सिर्फ देना था - सफाई विश्वास आदि। पर उसने रीति को तोड़ कर बात को एक विराम दिया। उसके पास बोलने के लिए था ही क्या! क्योंकि चोटियों में कस कर

जकड़ी इस लड़की से उसकी पहचान ही क्या! वह उस जंगली उड़ान भरते बालों वाली लड़की की अंटशंट आदतों के खिलाफ या कि उसकी बड़ी बड़ी कमियों के पक्ष में बोल सकता था, पर सामने जो लड़की खड़ी थी, उसकी सफेदी के बारे में कोई बयान कैसे दिया जा सकता था! उसने दो घड़ी पहले अपनी पूरी क्षमता से नाच कर शांत पड़ चुकी पुतलियों के सम्मान में बात को विराम दिया।

उस विराम का इवा कार्णिक पर ऐसा असर हुआ कि अपनी बारी के इस तरह खत्म हो चुकने के बाद भी वह उस जगह से हिली नहीं। जब दूसरे का नाम पुकारा गया और जब नाम पुकारा जाने वाला आ चुका तब भी वह सूत बराबर तक नहीं टसकी। उस दूसरे बच्चे को उसे छूकर संज्ञान की अवस्था तक पहुँचाना पड़ा, जहाँ से उसके वापस जाने का रास्ता शुरू होता था। लौटने के लिए मुड़ते वक्त ही उसे मैरून शर्ट दिख गयी, जिसकी शक्ल कुछ कुछ नीले रंग से मिलती जुलती थी। और शाम उसके घर के कमरे की रोशनी में वह यकीनन नीला ही दिखता।

इवा कार्णिक ने स्कूल से लौटने के बाद की दुपहरिया में आईने में अपना चेहरा देखा और उसे लगा कि उसे जितने गोरेपन की जरूरत थी, उसे वह पा चुकी है और अब क्रीम की जरूरत उसके चेहरे को नहीं रह गयी थी। उसने अपने हाथ और गरदन पर क्रीम को लपेस लिया और जाकर इजा के बगल में लेट गयी। उसने इजा को बतलाया कि उसे इस बार बहुत कम नंबर मिले। वसुंधरा कार्णिक, जोकि पालने से उसके झूठ बोलने के अंदाज से वाकिफ थी, हर वक्त खाली मजाक करती है लड़की वाली अदा से हंस दी।

ऐसे वक्त ही इवा कार्णिक की आस्था झूठ बोलने में और पुख्ता हो जाती और उसकी यह मान्यता एक बार फिर सही साबित होती कि झूठ और सच केवल बातें होती हैं और ये कि बोलने वाले की काबिलियत और सुनने वाले की परख किसी बात को सच या झूठ का जामा पहनाते हैं। उसने, उफ ऐसा सच जैसा दिखने वाला झूठ बोला फिर भी इजा ने पकड़ लिया - वाली लज्जा से कहा - 'इतिहास की टीचर बड़ी तारीफ कर रही थीं।' वसुंधरा कार्णिक गदगद हो गयी। उसने अपने तलवे से उसके पाँव को सहलाते हुए पूछा - 'अरे तेरे अपने ट्यूटर ने क्या कहा!'

'ओ ये! अब कहते क्या विनम्रता से पलकें झुकाये रहे।' दोनों अपने अपने कौशल से सच और झूठ को उनका जामा पहना कर खामोश पड़ गयीं।

शाम के एक खास वक्त, जबकि वसुंधरा कार्णिक को एक अलग थाप पर यह पहचानते हुए उठ कर दरवाजा खोल देना था कि ऊँचे कंधे वाला आदमी आ चुका है, दरवाजे पर दस्तक पड़ी। वह अपने बँधे बँधाये विश्वास के साथ दरवाजा खोल कर वापस मुड़ गयी, पर उसे हलका सा आभास हुआ कि दरवाजे पर कोई नहीं था। उसने पलट कर परखा। वाकई कोई नहीं। उसे वापस आकर बैठे दो मिनट भी नहीं गुजरा था कि फिर से वही दस्तक। बैठ चुकने के बाद तुरंत उठने में उसे तकलीफ होती थी। घुटने। दरवाजा फिर खाली था एक बार। इस बार अपनी कुर्सी तक वापस लौट कर वह तत्काल नहीं बैठी। खड़ी रह गयी। तिबारे की थाप की आस में। बाद में हालाँकि उसे बैठना पड़ा इस सोच के साथ कि कहीं ऐसा तो नहीं कि उसके कान निश्चित समय पर एक खास दस्तक सुन लेते हों रोज जबकि दस्तक कोई दरअसल होती नहीं हो और जब वह दरवाजा खोलती हो तो ऊँचे कंधे वाले आदमी की वहाँ उपस्थिति एक संयोग हो और आज ऐसा होने पर दरवाजे पर उसकी अनुपस्थिति ही सचाई की सबसे करीबी चीज हो!

शाम तेजी से गहरा रही थी और इवा कार्णिक बालों को खोल कर लगातार दरवाजा तकते तकते ऊब चुकी थी। किसी का न आना तय था ये जानते हुए भी। वह दरवाजे के बीचोंबीच कुर्सी लगा कर आगे पीछे हिलते हुए इंतजार कर सकती थी।

यह तीसरा दिन था। और लगभग उसी वक्त जब शाम की पाली की दस्तक हुआ करती थी, फोन पुरानी धुन में खड़खड़ाया। इस तरफ से वसुंधरा कार्णिक थी, उस पार ऊँचे कंधे वाला आदमी। इस पार से उसके दो दिन से न आने और कोई खबर तक न देने और आगे कब आने की बातें थीं, उस पार से पहले एक चुप्पी, फिर दूसरी चुप्पी, फिर तीसरी चुप्पी के पहले - आगे से न आ पाने की सूचना थी। आगे इस तरफ से तीसरी खामोशी को चीरती बदहवासी थी। क्यों, क्या मतलब क्यों नहीं आ पाआगे जैसी। उस तरफ से 'बस मैं' ये दो शब्द थे अलग अलग हटे हुए। फिर इस तरफ से 'ऐसे कैसे'। बदले में उधर से 'मैं अच्छा पढ़ा नहीं सका!' इस तरफ से फिर 'ऐसा कैसे'। उस तरफ से पहले मौन फिर रिसीवर के रखे जाने की शांति।

उस घर तक पहुँचने के लिए पैंसठ मुड़ी मुड़ी सीढ़ियाँ चढ़नी होती थीं। फिर दो पल सुस्ताने के बाद कॉलबेल बजाना होता था। कुछ पल दरवाजे के और बंद रहने पर दुबारे से बेल बजाना होता था। फिर भी न खुलने पर झुँझला कर एक बार दस्तक देनी होती थी। फिर झाँकताँक कर दरवाजे पर किसी सुराख की तलाश करनी होती थी, जिससे कि उस पार से देर होने की वजह की शिनाख्त की जा सके। फिर एक बार

दरवाजा पीट कर हाथ को वापस अपनी जगह आने के क्रम में ही एक ताले से टकराना होता था, जोकि उस दरवाजे पर लगा हो। फिर चौंक कर ये समझना होता था कि घर अभी बंद था बाहर से, भले वह खुला हुआ हो भीतर से। फिर ताले को छूकर वापस पैंसठ सीढ़ियाँ उतरनी होती थीं।

वह तीसरे दिन के बाद का दूसरा दिन था। अभी साढ़े पाँच बजे थे। जिसका मतलब कि उसे अगले दिन इजा से एक और एक्स्ट्रा क्लास का बहाना बना कर वापस से पैंसठ सीढ़ियाँ चढ़नी थीं ये मनाते हुए कि छह बजे के पहले तक घर के ताले में चाभी घुसा कर उसे उल्टी दिशा में उमेठ कर साँकल खोल दी गयी हो! एक ही बार में झटके से सब हो गया होता तो बात आयी गयी हो चुकी होती पर एक असफल साढ़े पाँच बजने के बाद से दूसरे छह बजने तक की प्रतीक्षा भारी थी। इस प्रतीक्षा में असमंजस का भी घालमेल था। कहीं उसके जाने से किसी के लौट कर आने की रही सही संभावना भी चली गयी तो! आज के साढ़े पाँच बजे के असफल होने के पीछे कहीं ऊपर वाले का यही इशारा तो नहीं! पर जैसा कि जीभ के एक बार जल चुकने के बाद भी गरम चीजों को मुँह लगाना छोड़ देने की बात लड़की बचपन से सीख नहीं पायी थी, वह अगली शाम भी टपाटप सीढ़ियाँ चढ़ गयी।

दरवाजा दो फाँक खुला हुआ था। कॉलबेल बजा कर दरवाजे के खुलने का इंतजार करने के बीच के वक्त में अपने आप को संतुलित कर लेने की जो सहूलियत होती है, उसका यहाँ अभाव था। उजास हल्की जो बाहर से जा रही थी, उतनी भर। घर के पास अपनी कोई रोशनी नहीं थी। किसी खुले हुए दरवाजे को फिर से खुलवाने के लिए क्या करना चाहिए, लड़की में उस शऊर की कमी थी। वह ठिठक ठिठक कर भीतर उस रेखा तक पहुँच गयी जहाँ बाहर के उजाले की आखिरी सरहद खिंची थी। वहाँ तक पहुँच कर उसे कुछ पुकारना था, जिसके लिए कंठ तैयार नहीं था क्योंकि उसे पता था कि 'सर' जैसी कोई आवाज वहाँ से बहुत भद्दी और बेसुरी निकलती। उसे यह भी लगा कि पता नहीं जिस घर में वह घुस चुकी है, वह सही घर है भी या नहीं! हालाँकि ये उसे बहुत थोड़ा थोड़ा लगा था। ज्यादा ज्यादा क्या कह कर पुकारा जाये यह असमंजस ही था, जो उसे वापस घर के दरवाजे तक लौटा लाया। वहाँ पहुँच कर उसने कॉलबेल टीप दिया।

घुटने तक लंबे शॉट्स और टी शर्ट पहने अंदर से जो आदमी तौलिये में हाथ पोंछता बाहर तक आ गया, वह दरवाजे के मेहमान को देख कर उसे वहीं से फुटा देने को कृतसंकल्प हो गया।

'कहाँ?'

मेहमान ने जवाब में भौंहे उचका कर वही सवाल दोहरा दिया।

'यहाँ कहाँ?'

'आपके यहाँ।'

मेजबान की एक धारणा फिर से पुख्ता हो गयी कि लड़की गजब की मूर्ख थी। वह उसके पीछे कौन है कोई है यह झाँकने लगा। वह भी गरदन मोड़ कर अपने पीछे क्या कोई है! ऐसा झाँकने लगी। फिर वह मुड़ी और उसने कहा - 'इजा नहीं है।'

'इतनी देर तक स्कूल में क्या कर रही थी?' उसने ऊपर से नीचे लड़की के स्कूलिया मेकअप को परखा।

'इधर उधर थी। कल साढ़े पाँच बजे आप नहीं मिले तो छह बजा रही थी।'

'भीतर आओ।'

'एक बार आयी थी।'

'ओफ! क्या था?'

'अँधेरा था।'

'काम क्या था?'

'घर के अंदर रोशनी नहीं किया!'

'नहीं। काम क्या था?'

'इजा ने कहा है आने को। उनका मन नहीं लगता।'

'मन लगाने जाना है?'

'पढ़ाने के लिए।'

'किसे!' वह चौंका, ऐसा लड़की को लगा।

'मुझे।'

'ओ! तुम्हें! पर तुम्हें तो सब आता है।'

'मैं बहुत मन लगा कर पढ़ूँगी।'

'अभी तक क्यों नहीं पढ़ रही थी मन लगा कर?'

'आप रोज आ रहे थे इसीलिए।'

'अच्छा! तो मेरा रोज रोज आना छुड़वाने के लिए तुमने मन लगा कर पढ़ना छोड़ दिया!'

'छोड़ा कहाँ?'

'ओ हाँ हाँ छोड़ा कहाँ! मतलब शुरू से ही नहीं पढ़ा न!'

'हाँ।'

'इजा से कहना दूसरा ट्यूटर खोजें।'

वह अभी अभी तो अच्छा भला था, अचानक से कठोर हो गया, ऐसा लड़की को लगा।

'मैं दूसरे ट्यूटर से कैसे पढ़ पाऊँगी!'

'मतलब?'

'इजा ने नहीं मैंने कहा है आने को। मतलब इजा ने भी कहा है। कहा नहीं है पर कहती। मैं बहुत मन लगा कर...' आगे आवाज दरक गयी।

'घर में भी झूठ बोल कर आयी होगी। घर जाओ।'

'आप कल आयेंगे न!'

'तुम जाओ।'

'आप झूठ नहीं बोलते। आइयेगा न। अभी ही चलिए न। मुझे बहुत सारा होमवर्क भी मिला है।'

ऊँचे कंधे वाले आदमी के सारे शब्द पुराने पड़ गये।

'आप अपने घर में रोशनी जला कर और अच्छे कपड़े पहन कर आइये थोड़ी देर में।'

उसने जाने के लिए सामान उठाना शुरू किया तब ऊँचे कंधे वाला आदमी देख सका कि स्कूल बैग, लंच, पानी की बॉटल सब फर्श पर टिका कर वह खड़ी थी तभी से।

विक्रम आहूजा ने उसे आवाज देकर पीछे पलटा दिया।

'इजा से कहना तुम्हारे लिए नये मोजे खरीदे।'

इवा कार्णिक ने बस्ता, पानी, लंच सबको वापस जमीन पर रख कर बायें मोजे को दायें मोजे जितना खींचा, ऊपर और फिर पलट कर चली गयीं।

किताब भौतिकी की थी। उसकी बाइंडिग ढीली हो गयी थी और हवा की हल्की ससर पन्ने पलट दे रही थी। कमरे में एकदम शांति थी। इवा कार्णिक को एक न्यूमेरिकल हल करने को मिला था। दोनों जानते थे कि उससे नहीं हो पायेगा पर दिखावे में कोई इसे मानने के लिए तैयार नहीं था। दरअसल इवा कार्णिक जिंदगी में पहली बार इतनी गंभीरता से प्रयासरत थी। सच की गंभीरता से। ऊँचे कंधे वाले आदमी के दिमाग में उसकी इस गंभीरता के बरअक्स एक हल्का खयाल जागा। तय रहा कि वह आम इमली, जो भी बना कर दिखलायेगी, विक्रम आहूजा उसके सही होने की घोषणा कर देगा।

इवा कार्णिक ने जो आगे बढ़ाया, वह तीन लाइन के बाद फार्मूले से विचलित हो गया था। उस तीसरे लाइन के आगे ही विक्रम आहूजा ने पेंसिल से निशान लगा दिया, सही का। लड़की के चेहरे से सिकुड़न चली गयी और उसका हर एक अंग अपने अधिकतम फैलाव में खुल गया। उसने उसके हाथों से कॉपी छीन ली और जल्दी जल्दी पन्ना देख कर कहा - 'सही है!'

'बनाया गलत था क्या!'

उसने सिर को तेज दायें बायें डुला कर कॉपी को वापस अपने ट्यूटर की ओर बढ़ा दिया।

'दुबारे से देखूँगा तो हो सके ये गलत निकल जाय!'

लड़की ने बहुत गति से अपने हाथ वापस खींचे और कॉपी को कलेजे में घुसेड़ लिया। उसकी हँसी की तुतलाहट में ऊँचे कंधे वाले आदमी के आलिंद और निलय में खून ले जाने ले आने वाली शिराएँ और धमनियाँ अचानक से अपना काम भूल गयीं। उसका चेहरा जर्द हो गया और उसे अपने धोखे से डर लगा।

इवा कार्णिक को ऐसा लगा कि उसकी कॉपी को छुपा लेने की हरकत ने सामने वाले के चेहरे पर ठीक उस काम के विपरीत कोई असर किया है, जो उसके खुद के चेहरे पर फेयरनेस क्रीम ने किया था। उसने अपने हाथ बढ़ा दिये। कॉपी सहित। विक्रम आहूजा को इतना लग गया कि अब आगे वह उससे आँखें नहीं मिला सकेगा। इस खयाल ने उसके भीतर इतनी बेचैनी ठूँस दी आधे पल में कि उसने आखिरी झलक कैद कर लेने के होश में पलकें उठायीं, वहाँ, जहाँ अपने सही साबित हो चुकने की पुलक में तैरती पुतलियाँ थीं। विक्रम आहूजा वहाँ से अपने लिए नमक भर सुकून चुरा कर भाग सकता था, पर उसके लौटने के सारे रास्ते किसी ने बंद कर दिये थे। लिहाजा उसे वहीं रुक कर लड़की की आँखों में देखना पड़ा, जहाँ कॉपी पर तीसरी पंक्ति के बाद फिसल गया फार्मूला दुबका था, जो पहेली को उसकी मंजिल तक पहुँचाने का दमखम रखता था।

लड़की सब कुछ उसी रोज पढ़ लेने के उत्साह में थी। उसने तीन सवाल पूछ डाले, जिन सबका ताल्लुक भौतिकी से ही था, कहीं न कहीं और सबके सब जवाब की पात्रता भी रखते थे। विक्रम आहूजा के माथे पर पसीना छलक आया जवाब की जगह घेर कर। उसने आवाज पर पूरा नियंत्रण साध कर जवाब देना शुरू किया पर आवाज धागा निकल चुकी सूई की तरह टुकुड़ टुकुड़ ताकती रही। उस दिन के कोटे की पढ़ाई के खत्म हो चुकने पर विक्रम आहूजा उठ कर खड़ा हो गया और अगले ही पल वह बैठ भी गया। उसने मेज पर उस दिन के खाते का अपना रोल निभा कर औंधे मुँह पड़ी नोटबुक को उठाया। बिना किसी पूर्व सूचना या पूर्व अभ्यास के हुई इस कार्यवाही के प्रतिउत्तर में नोटबुक हड़बड़ा कर उठी और इस क्रम में उसके पन्ने अपने आप को तेजी से पलटने लगे और वो पन्ना तक खुल गया, जिसे वाकई में ऊँचे कंधे वाला आदमी खोलना चाह रहा था।

विक्रम आहूजा ने बगैर लड़की के अचकचायेपन को देखे, उस न्यूमेरिकल के आगे क्रॉस का निशान लगा दिया और तीसरे लाइन के आगे से बहक गये फॉर्मूले को जहाँ का तहाँ पकड़ कर मंजिल तक पहुँचा दिया। इवा कार्णिक के गलत जवाब के समानांतर एक सही हल लिखा जा चुका था। इवा कार्णिक को जिंदगी में पहली बार

गंभीर दुख हुआ और उसकी आँखों की कोर में एक बिना दाँत वाला आँसू आकर ठिठक गया था।

आईने के आगे बात मलिन थी। क्रीम का इस्तेमाल स्थगित करते ही त्वचा का साँवला स्वभाव उग्र हो गया था। इवा कार्णिक के आँसू अब चूँकि एक दूसरे का हाथ पकड़ कर बहने लगे थे, इसलिए आईने में दिखलाई पड़ती हुई साँवली तस्वीर को देख कर इवा कार्णिक चाहे तो कल्पना कर सकती थी कि वह शाम के धुँधलके में नदी में अपनी हिलती डुलती परछाईं देख रही है। उसके आँसू क्यों थे! उसके जवाब का सही प्रमाणित होकर भी गलत साबित हो जाना इसकी वजह क्या! या कि कारण कोई दूसरा, जो आईने के सामने और गहरा गया था!

यह अपने पिछड़ जाने का अहसास था। कितनी मुश्किल बात थी कि एक ऐसी दौड़ जिसमें अकेली वही दौड़ रही थी, और वही पिछड़ भी रही थी। इस आईने वाली अतिरिक्त समस्या के लिए, जो आग में घी की हैसियत से मौजूद हो गयी थी, उसके पास एक बढ़िया विकल्प यह भी था कि वह इजा की रसोई में आलू का छिल्का उतारने वाला औजार ले आये और उसकी सहायता से चेहरे की ऊपरी परत हटा दे। पर चूँकि मारे हताशा के उसका एक कदम भी चलने का मन नहीं हो रहा था, उसने वहीं खड़े खड़े कर सकने वाले काम को चुना और अधपिचकी ट्यूब से तीन दिन के कोटे की क्रीम निकाल कर चेहरे पर लपेस लिया।

ऊँचे कंधे वाला आदमी अपने फ्लैट की घुमावदार सीढ़ियाँ न चढ़ कर नीचे के चबूतरे पर बैठ गया, जिस पर गर्मी की शाम और जाड़े की दोपहर में फ्लैट भर की औरतें बैठा करती थीं। उसने अपनी मुट्ठी खोली, जो भीतर से गीली थी और जिसके भीतरी गीलेपन में वह किसी के आँसू चुरा लाया था। उसने चुराने का मन बना ही लिया था तो वह इवा कार्णिक की उस हँसी को चुरा सकता था, जो उसके खेल के बाद लड़की के चेहरे पर उभरी थी, क्योंकि थी तो वह भी विरल ही। पर उसने अपने साथ लाने के लिए उस आखिरी आँसू को चुना जो अब तक के उसके अनुभव से इवा कार्णिक जैसी लड़की की आँखों के लिए नहीं बना था। उसे लग गया था कि पिछली हँसी को लड़की भले सँभाल ले, पर इस आँसू को सँभालना उसके बूते का नहीं था, इसीलिए उसकी पसीजी हथेली गीली चीज को अपने साथ ले आयी।

वह दिन में चार की औसत से उन सीढ़ियों पर से चढ़ता उतरता था, पर पहली बार उसके भीतर उन्हें गिनने की इच्छा जगी। उसे ठीक ठीक मालूम था कि चाभी के गुच्छे में से कौन सी चाभी उसके घर का ताला खोला करती थी, पर उसे बारी बारी से हर चाभी को घुसा कर ताला खोलने की असफल कोशिश करने का मन हुआ। अँधेरे घर के अंदर प्रवेश करने के बाद बत्ती जलायी जाती है, इस विकल्प का आविष्कार हुआ ही न हो जैसे, ऐसा। उसने सोफे पर बैठ कर अपना जूता अलगाया और मोजे को बजाय नीचे की तरफ खींचने के उसके हाथों ने उसे घुटने की ओर कस कर खींचा।

उसे लगा जैसे भीतर के कमरे से किसी के लगातार कुछ रटने की आवाजें आ रही हों! उसके हाथों से पैर फिसल गया। दोनों के अपने अपने विस्मय थे। वजह कि किसी ने भी इवा कार्णिक को किसी भी चीज को कभी मुँह से रटते नहीं सुना था। वह आँखों से ही रटती आयी थी आज तक। वह उठ कर खड़ा हो गया। कानों का धोखा या कानों को ही धोखा हुआ था। घर शांत था। पर चीजें घर की लगातार कुछ रटे जा रही थीं। सिंक का नल खोलने पर पानी की रटी रटायी धार। स्विच ऑन करने पर पंखे के डैनों का वही रटा रटाया घेरा। उसने गौर किया कि हर रटने रटाने में शोर था। सिवाय आँखों से रटते जाने के।

वसुंधरा कार्णिक दरवाजे के पीछे से अँधेरे में अपने आप को घुलाती हुई घंटों झाँकते रहने का अभ्यास साध रही थी। वह संदेह को फूँक फूँक कर उड़ा रही थी दूर दूर। वह जानती थी कि पंद्रहवाँ सोलहवाँ सत्रहवाँ साल निकल जाय चैन से तो फिर पहरेदारी की जरूरत नहीं होती उम्र भर। उसके अपने माँ बाप ने उसकी उमर के खतरे के निशान को छूने के पहले ही उसे अगले ठौर के हवाले कर दिया था। लक्ष्मणरेखा सिंदूर की थी तो क्या, सातों महासागरों के पानी को मिला कर पीने का नशा इन्हीं तीन सीढ़ियों पर तो चखा था उसने।

सत्रहवें साल की आखिरी हिचकी तक वह माँ बन गयी थी। उसके आगे की स्क्रिप्ट में जो कुछ भी लिखा था, जैसा भी लिखा था, उसे बिना सवाल किये वही दृश्य वही संवाद अपनाने पड़े। पहले एक बच्चा बिछड़ा, फिर पति, फिर दूसरा बच्चा। अब जबकि उसके चेहरे से मंच के बीचोंबीच की रोशनी का गोला सरक चुका था, उसने नेपथ्य से डोरियों को खींचने, ढील देने का काम सँभाल लिया था मुस्तैदी से और यह

भाँप चुकने पर कि इवा कार्णिक फिसलने के जुनून में है, उसकी डोर को खींचे रखना उसका सबसे खास दायित्व।

इस पूरे प्रकरण में ऊँचे कंधे वाले आदमी पर अविश्वास की कोई सूरत नहीं बनती थी। बस संदेह का पत्ता वहीं खड़खड़ाता था, जहाँ एक बार ट्यूशन छोड़ चुकने का फैसला ले लेने के बाद ट्यूटर दुबारा चला आने लगा था पहले की तरह। अगर कि इवा कार्णिक सच में उसे मनाने गयी थी तो भी पढ़ने लिखने में तीन कौड़ी की एक लड़की की बात को मान ही लेने की उसकी क्या मजबूरी थी! इस बेहद अफसोसजनक वाकये की नींव पर ही उसने ताँकझाँक की पूरी बुनियाद खड़ी की थी। ये बात और कि उन दोनों को एकांत में मिला पाने का व्यूह भी अक्सर उसके ही हाथों रचा जाता। कह सकते हैं कि वह जाल बिछा कर और उस तक इवा कार्णिक को ले जाकर यह परखना चाहती थी कि वह फँस पाती है कि नहीं!

उसका चश्मा ढीला था और नाक के रास्ते फिसलने लगता था। इस फिसलन के आगे बाधा साबित होते हुए वसुंधरा कार्णिक को लगातार नजर रखनी थी उनके हावभाव पर। और अगर कि वे हावभाव वाकई किसी लफड़े के अंश थे तो वसुंधरा कार्णिक यह स्वीकार करने में मिनट भर भी नहीं खरचती कि उसका जाल पुरानी किस्म का था जरूर पर दम था उसमें। खम भी। यह सब ताकाझाँकी तब तक चलती जब तक घड़ी की सूइयाँ साढ़े आठ की मुद्रा में आकर बैठ न जातीं और ऊँचे कंधे वाला आदमी उठ न खड़ा होता सरपट। और यहीं उस दिन के कोटे के खत्म होने का परदा वसुंधरा कार्णिक को खींचना होता।

परदा सटते ही वह डोर को फेंक फाँक कर उसमें उलझते अपने पैरों की परवाह छोड़ गिरते पड़ते ड्राइंग रूम के पार्टिशन के उस तरफ पहुँचना चाहती, जहाँ उसे रास्ता छेंक कर खड़े हो जाना था दरवाजे के बीचोंबीच ताकि विक्रम आहूजा बाहर कदम न धर सके। वह रुक जाता। वसुंधरा कार्णिक बात को जिधर भी मोड़ती, वह बिल्कुल छोटा सा जवाब देता। उसकी उपस्थिति पूरे वार्तालाप में उतनी ही थी, जितनी लंबे लंबे वाक्यों में 'है' या 'था' की हुआ करती है। छह रोज पहले सुना चुके एक वाकये को दुहराते दुहराते आँख की कोर से उसे पार्टिशन के पास एक जिंदा सी परछाईं डोलती सी दिखती। तो क्या इवा कार्णिक परदे के उस तरफ थी! वह तुरंत तेज लगाम खींच कर कह उठती - 'मैंने तुम्हें आज भी बड़ी देर करा दी न! बातों की सुध में मुझे वक्त का ख्याल ही न रहा। अच्छा?'

'अच्छा' शब्द के खत्म होते होते वह उठ खड़ा होता और हाथ जोड़ कर बाहर निकल जाता। उनकी दुनिया से।

वसुंधरा कार्णिक पलट कर घर के भीतर की ओर बढ़ने लगती। वह चौखट दर चौखट फाँदती जाती पर कोई दिखता नहीं। इवा कार्णिक अपने बिस्तर पर इतनी सारी किताबों से दबी मिलती कि कोई नहीं मानेगा कि वह इतनी सारी किताबों के बीच से अपने को निकाल कर परदे की ओट तक गयी और वापस वहाँ से लौट कर अपने को उन्हीं किताबों से दबा लिया ऐसी सफाई और फुर्ती से। तो क्या वाकई पार्टिशन के पीछे वह नहीं थी!

वसुंधरा कार्णिक का माथा गरम था। उसकी पलकें झुरमुट झुरमुट खुलती थीं। फिर बंद हो जाती थीं। इवा कार्णिक ने कढ़ाई में तेल के कड़क चुकने पर मुट्ठी मुट्ठी दो मुट्ठी भिंडियाँ कटी कटी डाल दीं उसमें। तेल कुछ तेज ही कड़क गया था। वजह यही कि भिंडी का एक बीज उछल कर उसकी नाक के सबसे नुकीले सिरे से टकराया। भिंडी को ढक कर भूनना था कि खुली कढ़ाही में! तेज आँच पर कि सिम चूल्हे पर! और सबसे बड़ा सवाल था कि थोड़ी भुन चुकी भिंडी में वापस फोरन कैसे डाला जाय! मिर्च का। जम चुकी दही में वापस जोरन कैसे डाला जाय! ओहो हो!

ऊँचे कंधे वाले आदमी के आया होने पर दरवाजा खोलने वह छलनी हाथ में लिए गयी, जिसके सिरे पर हल्दी से गली भिंडी चिपकी थी।

'इजा को बुखार है। कल आइएगा पढ़ाने।' उसने आधा दरवाजा छेंक कर कहा।

'आज देखने तो आ सकता हूँ!'

'ज्यादा बीमार नहीं हैं।'

उसने एक पल अपने ट्यूटर की आँखों में देखा और हट कर रास्ता दे दिया। पूरा।

वसुंधरा कार्णिक ने चंचल बीमार की भूमिका में आते हुए अपने बीमार धड़ को उठा कर पूछा - 'कैसे हो?'

ऊँचे कंधे वाले आदमी ने - 'आप लेटी रहें' की तरह हाथ बढ़ा कर कहा - 'अच्छा हूँ।'

वसुंधरा कार्णिक ने अभिनयाधिक्य से कहा - 'चाय पीओगे?'

'कौन बनायेगा?'

'तुम।'

'आप पीयेंगी?'

'नहीं तो।'

इवा कार्णिक मेजपोश ठीक करने के बहाने उनकी बातचीत में सेंध मारने आयी थी। पर उनके बीच के टॉपिक को आधा अधूरा सूँघ कर वह पिछले पाँव खिसक गयी। वह कुछ भी कर सकती थी पर चाय बनाने का विकल्प उसे खौलाता था आतंक से। उसने सतर्क नजरों से कड़ाही में भिंडियों को फैला दिया और चुटकी से एक एक के ऊपर नमक छींट कर दम साध कर भिंडियों को उलटने पुलटने लगी। उसकी सतर्क नजरों के घेरे में एक ऊँचा आदमी आ गया। वह हड़बड़ा कर पलटी और उसने कहा - 'मुझे चाय बनाना नहीं आता।'

'सामने जो है वह भी जल रहा है।'

उसने गैस का नॉब बंद करके पूछा - 'चाय सचमुच बनानी होगी क्या!'

'तुम्हारी इजा बता रही थी तुम्हें रोटियाँ बनानी नहीं आतीं। आज का तुम्हारा ट्यूशन यही।'

'मैं बेल सकती हूँ सेंक भी सकती हूँ।'

'तो फिर क्या नहीं कर सकती?'

'उसे खा नहीं सकती।'

विक्रम आहूजा पहली बार सिर्फ उसके लिए मुस्कुराया। हालाँकि वह जान नहीं सकी क्यों मुस्कुराया, पर लड़की को इस बात का अहसास हुआ कि दरवाजे से ही उसे लौटा देकर वह कितनी बड़ी भूल करते करते रह गयी थी। उसने पलट कर आटे के डिब्बे का ढक्कन खोल दिया और दूसरे पल दरवाजे से जरा सी बची रह गयी जगह से अपनी देह को निकालते हुए इजा के कमरे तक भाग आकर उनके पैर दबाने लगी। उसकी तलहथी में तेज पसीना था, ये बात इजा के पैर को छूकर ही पता चली।

इजा ने अपने पैर ऊपर सरका लिए - 'किचन में जा!'

किचन में जाने का रास्ता बहुत आसान था। नाक की सीध में सोलह सत्रह कदम चल कर दाहिने मुड़ कर सात कदम बस। पर उसने अपने मार्ग में विचलन लाते हुए अपने को विपरीत दिशा में मोड़ लिया। भाग भाग कर वह अपने कमरे तक गयी, आईने में देख देख कर चेहरे पर क्रीम लपेसा और किचन के दरवाजे पर खड़े खड़े भीतर देखने लगी। ऊँचे कंधे वाले आदमी ने आटे के बीच एक गड्ढा बनाया और उसे पानी से भर दिया। फिर उस पानी को अगल बगल के आटे से भर दिया। उसने बायें हाथ से पानी डाल डाल कर आटा गूँथ लिया और लोइयाँ बनानी शुरू कर दीं। उसने बगैर पलटे, पीछे खड़ी परछाईं से पूछा - 'कितनी रोटियाँ खाओगी तुम?'

लड़की सकपका गयी। उसने शब्दों को आधे आधे हिस्सों में बाँट कर कहा - 'दो।'

'और इजा?'

'दो।'

'और मैं?'

'आपके हिस्से की भिंडी तो मैंने नहीं बनायी।'

वह बेलन समेत पलटा।

'आपको कैसे पता चला कि मैं पीछे खड़ी हूँ?'

'पाउडर या क्रीम की खुशबू कमरे में फैली उससे...' तुमने कैसे जाना कि मुझे भिंडी नहीं पसंद!'

इवा कार्णिक के होंठ अलग गये। हलकी सी रोशनी में वह आगे बढ़ा। इवा कार्णिक पीछे बढ़ सकती थी, पर वह हिली नहीं बिंदु भर भी। अधिक से अधिक वह जितने करीब आ सकता था, उतने करीब वह आ चुका था। सीने पर हाथ रख कर जिस जगह पर वह ठीक ठीक दिल के होने की पड़ताल कर सकती थी, उसके ठीक नीचे से एक बवंडर उठा जो, उसकी मानें तो उसके शरीर को ढक्कन की मानिंद उड़ा सकता था फक्क की आवाज के साथ।

उसे लगा कि उसके कानों से कुछ रिसने लगा था एकदम तरल और शर्तिया गीला। नहाते वक्त दाहिने कान में घुस गया पानी शायद, जिसे उसने स्कूल में भी दाहिनी बगल झुकते हुए कूद कूद कर निकालने की कोशिश की थी। पर जो निकला था नहीं

खाली ढब ढब बजा भर था भीतर। और जो अब रिस रहा था सुसुम सुसुम। वह स्कूल में नजर मिलाने वाले खेल में हमेशा सबसे जल्दी आउट होने वालों में थी, पर यहाँ सामने वाले के आगे अकड़ेपन की स्थिति में भी उसकी एक पलक तक विद्रोह नहीं कर रही थी पल भर झपकने के लिए। ऊँचे कंधे वाले आदमी का चेहरा उसके ठीक ऊपर झुक गया था और इवा कार्णिक को भान हो चुका था कि अगली साँस जो वह छोड़ेगी, वह सामने वाले से टकरा कर ही आगे बढ़ेगी। इस आशंका से कि साँसों का टकराना कमरे की खामोशी को चिनगा न जाये उसने अपनी साँसें अंदर ही रोक लीं। ऊँचे कंधे वाले आदमी की आँखें जरा सिकुड़ीं और उसने कहा - 'तुमने जो लगाया है सफेद सफेद, वह माथे पर ठीक से पसरा नहीं है।'

वह बेलन समेत पलटा। इवा कार्णिक भी बिना वक्त गवाँये पलटी। उसने अपने ललाट पर तीन बार रगड़ रगड़ कर हाथ ससराया और किवाड़ की आड़ में छिप कर खड़ी हो गयी। आईना रोशनी समेत उसकी तलाश में घर भर में पैदल पैदल घूम रहा था और उसे किसी भी कीमत पर अपने आप को उसकी नजरों से बचा ही लेना था।

गरम माथे वाली स्त्री के पलंग से अब तक के शुबहा के यकीन में बदल जाने के बाद की भारी साँसों वाली हुंकारी निकली। पलंग जोर मोर से चड़मड़ाया और उसने लेटे लेटे ही अपने जाल को खींच कर समेट लेने की कोशिश की क्योंकि शिकार बगैर जाल की मदद के भी, फँस जाने को अपने आप उत्सुक दिखता था या ऐसा ही कुछ भी।

लंच ब्रेक में अब इवा कार्णिक अपने दोस्तों के साथ नहीं दिखती थी। वह प्ले ग्राउंड को घुटने तक घेरने वाली बाउंडरी वॉल पर एक किसी पेड़ के नीचे उसकी गिरती पत्तियों को गिनती हुई बैठी रहती। वह सन्नाटे को छूने के लिए शरारत से दूर भागने लगी। वह टीचर के लेक्चर को घूँट घूँट सुन लेने के इरादे से हर क्लास की शुरुआत करती ताकि शाम में किसी को अपने किताबी ज्ञान से चौंकाया जा सके, पर होता ये कि बात जैसे ही तीन चौथाई आगे बढ़ती उसका शरीर झपकने लगता। वह जाँघ की चमड़ी को स्कर्ट समेत चुटकियों में दबा कर अपने शरीर को जगाने का जुगाड़ करने लगती और इसी खींचातानी में 'सुन लेने का इरादा' पीछे ढकेला जाता।

उसे तीखी धूप से अब डर नहीं लगता न सामने वाले के उजले रंग से, जिनकी उपस्थिति उसके रंग को और गहराने का खतरा उत्पन्न करती थी। वह खिड़कियों से

देख कर शाम के होने का और दरवाजे की झिर्रियों से देख कर गहरे शाम के होने का, जबकि ट्यूटर के आने का वक्त होता, इंतजार कर सकती थी, पर जैसे ही वसुंधरा कार्णिक ऊँचे कंधे वाले आदमी के नाम का दरवाजा खोल देती और वह घर के भीतर दाखिल हो जाता, उसका दिल उलट जाता और वह अँधेरे कमरे में अकेले अकेले सुलगने लगती - उन्हें कोई काम धाम नहीं है क्या रोज रोज चले आते हैं बिला नागा किस्म का। वह दो तीन बार औरताना घिसी आवाज में इजा के ड्रांइग रूम से अपना नाम पुकारे जाने के बाद कुछ रटती हुई सी कमरे में दाखिल होती और ट्यूशन का पूरा वक्त कुछ बिदबिदाते हुए ही गुजार देती।

इवा कार्णिक अँधेरे कमरे में सूखे पत्ते सी खड़खड़ाती थी। वह मनाती थी कि सूरज रात भर भटक भटक कर ऐसा लटपटाये कि सुबह दुबारा निकलने का रास्ता ही न खोज पाये वह। उसका शरीर अपने उठान की पर्याप्त संभावना तक विकसित हो चुका था। पलकों के लिए भी जितना बढ़ना मुकर्रर था, उस सीमा को छू चुकी थीं वे। वह अगर हथेली में अपना चेहरा ढाँपती तो पलकें उँगलियों के बिचले पोर पर सहरती थीं। वह क्या चाहती थी, यह सवाल अस्तित्व में आया नहीं था। वह क्या नहीं चाहती थी - यह जवाब जगमगा रहा था उजाले में।

जो भी सामने हो रहा था उसके, वह चाहती थी कि वही न हो। हर होती हुई चीज को नकार कर मुँह फेर लेने जैसा चित्त। जब उसके साथ के पढ़ने वाले लड़के अपने सिर को टोपियों से ढके, दरके बाँस जैसी आवाज में प्रचलित अनुनासिक ध्वनि वाले आलाप आजमा रहे होते, लड़कियाँ स्कर्ट की हद के पार, घुटने से नीचे के उघड़े पैर के रोओं को सफाई से उड़ाने की तरकीबों में मशगूल होतीं, इवा कार्णिक दिन भर शाम के होने का इंतजार करती और शाम भर हर घटना के आगे न न लिख देने के मौके का इंतजार।

जिंदगी को खोल दे तो वह कोरे कागज जैसी। वह मोड़ कर उसका जहाज बना सकती थी और एक सुर में पानी का इंतजार कर सकती थी, उसे तैराने के लिए। अगर कि पानी बाल्टी भर कर सामने आ जाता तो वह तुनक कर खयाल बदल लेती और जहाज को वापस खोल कर कागज और कागज को एक बार फिर वापस मोड़ कर पंखा बना लेती और ताबड़तोड़ उसे झेलने लगती पसीने के इंतजार में। अगर पसीना बूँद भर उग भी जाता होंठों के ऊपर तो वह धिक्कार भाव से पंखे की लहरों को भहरा कर तुड़मुड़े कागज का नकमदान बनाने लग जाती। जब नमकदान में भरे जाने के लिए बारीक नमक खुद हाजिर हो जाता तो वह झुँझला कर कागज को मोड़ तरोड़

कर कूड़ेदान तलाशने लगती। पर ऐन वक्त पर कूड़ेदान अपने को छिपा कर जिंदगी को गर्क होने से साफ साफ बचा लेता।

खाने की मेज पर इवा कार्णिक बिल्कुल सामान्य। लाल नाक को छुड़ा कर सब कुछ बिल्कुल सामान्य। इजा की रसोई में लेमन राइस था, जो बहुत लाड़ से इवा कार्णिक की ओर बढ़ कर आया।

'कैसा बना?'

इवा कार्णिक ने उसमें से सरसों के दो काले दाने चुने और उनके कड़वापन को दाँतों की धार पर मसल कर कहा - 'अच्छा। दिखता अच्छा है।'

इजा ने सिर से पाँव तक लड़की को देखा। उसकी परछाईं को भी। दोनों में से किसी के भी ऊपर अपराधबोध का एक कतरा तक नहीं था।

'आपको बाबा की आवाज याद है?'

'पहचान लूँगी लगता है।'

'अगली बार भी क्या आप वैसा ही साथी चाहेंगी अपने लिए?'

'कौन जाने।' ऐसा जवाब इवा कार्णिक ने सुना। जबकि इजा चुप बैठी थी। अपने मुँह का कौर निगल चुकने के बाद उसने कहा - 'इन सवालों पर अपना कोई अख्तियार नहीं होता। सब तय होता है ऊपर से।'

इवा कार्णिक की नजरें तीखी थीं, जबकि सरसों का दाना इस बार वसुंधरा कार्णिक के दाँतों तले दबा था।

'हूँ।'

'क्या?'

'अख्तियार।'

वसुंधरा कार्णिक का चेहरा पानी बन गया। कंकड़ मारने से थरथराता हुआ पानी।

'आप मेरे जितनी थीं तो कितनी चोटियाँ बनाती थीं?'

'शायद दो।'

'आप उस वक्त भी ऐसी ही गोरी थीं?'

'रही होऊँगी।'

'वो आपकी जिंदगी के सबसे अच्छे पल थे न?'

'शायद।'

'अगर हम अपने अतीत के अनिश्चय के साथ इतनी सहजता से रह सकते हैं तो भविष्य का अनिश्चय हमें इतना परेशान क्यों करता है!'

इजा के संबोधन से पुकारी जाने वाली स्त्री चिहुँक गयी। अरे यह झूठ है तो सच क्या था! और अगर यह सच था तो झूठ क्या था! क्या वाकई वसुंधरा कार्णिक जिस मूर्ख लड़की के साथ अब तक रह रही थी, वह एक पहुँची हुई खिलाड़ी थी! ऐसी ऐसी दाँवपेंच की बातें बनाने वाली!

रात के रंग में मिलावट थी। हल्का साँवला रंग। वसुंधरा कार्णिक ने अपनी साँसें ऊपर की ओर खींच लीं और कदम बढ़ाना शुरू किया। लड़की के कमरे तक पहुँच कर उसने परदे की ओट में एक आँख को छिपा लिया। एक उघड़ी आँख, जो अँधेरे में बेहतर देखने में महारत रखती थी, ने हल्की साँवली रात के बीच से गहरी साँवली लड़की को साफ साफ अलगा कर देख लिया। इवा कार्णिक तभी खिड़की से लग कर खड़ी थी और बहुत संभव है उसकी भी एक आँख परदे की ओट में छिपी हो और दूसरी से वह बाहर की दुनिया को देख रही हो।

लड़की का इतनी रात तक जगे होना और वह भी चलते देखते जगे होना एक घटना थी। पर वसुंधरा कार्णिक ने उसे बगैर चौंके हुए ऐसे स्वीकार किया मानों गयी रात बरसों से वह लड़की को बिस्तर से दूर खड़ी देखती आयी हो। ठीक इसी वक्त एक अफसोस उसे अपने आप पर हुआ कि उसे पता तक नहीं चला कब लड़की ने पालने से उठ कर खिड़की से लग कर खड़ी होने तक का सफर पार कर लिया। उसके मन में उसे खिड़की के पास से अपनी गोद में उठा कर वापस बिस्तर पर सुला कर थपकाने की चाह जागी ताकि लड़की एक ढाँढ़स भरी नींद सो सके। उसकी चाह जागने के साथ ही अपने तीखेपन में उजागर हो गयी और बिना पल गँवाये वसुंधरा कार्णिक ने

अपनी दूसरी आँख को भी परदे की ओट से बाहर निकाला और उसके कदम लगभग कमरे में प्रवेश करने के लिए उठे कि उन्हें रुकना पड़ा।

उस कमरे में कैशोर्य और जवानी की चौखट पर ठिठकी एक लड़की की अंतरंग दुनिया थी, जिसमें बिना दरवाजे पर दस्तक दिये प्रवेश करने में वसुंधरा कार्णिक के कदम काँप गये। बल्कि उस कमरे का वैभव ऐसा प्रचंड था कि अपने तुड़ेमुड़े गेटअप में उसमें दाखिल होने का साहस ही नहीं हुआ उसे। उसकी आँखें, होंठ, आत्मा तमाम चीजें खुली की खुली रह गयीं क्योंकि चौसठ साल गुजर जाने के बाद भी कभी ऐसा कोई वैभवशाली कमरा आया ही नहीं उसके अपने जीवन में।

एक मोटरी की तरह उसे उठा कर किसी की बगल में रख कर अग्नि के इर्दगिर्द सारा मामला तमाम कर दिया गया और घूँघट पलटने के बाद वह उसी पलटने वाले से रटा रटाया प्यार करती चली गयी। एक आदमी ने दुनिया के गोल नक्शे पर जिस जगह के जो नाम उसे बताये, वसुंधरा कार्णिक ने उस जगह को उसी नाम से अपना लिया बिना किसी देख परख के। किसी ने कहा कि वह लाल चीज आग है उसे मत छुओ! जल जाओगी! और वह यह मान कर दूर बैठ गयी कि लाल रंग में बहुत लहक होती है। ऐसा तो कभी नहीं हुआ कि वह सुने, पास जाय, छुए, जले, हाथ वापस खींचे, दर्द से बिलबिलाये और दर्द के थोड़ा शांत पड़ने पर 'फिर से एक बार और छू लूँ क्या' की उत्कंठा से एक बार फिर से छू ले उसे और फिर से जल जाय एक बार!

उसने जलने की पीड़ा से बचे रह गये अपने शरीर को पीछे खींच लिया। उसी समय उस अप्राप्य जलन के समानांतर एक डाह उसके सीने में उठी - क्यों जो उस लड़की को मिल रहा है उसे नहीं मिला कभी! क्यों नियति ने उसे कभी चुनने की स्वतंत्रता नहीं दी। गलत सही जो भी। क्यों जिंदगी ने उसे उस चुने हुए को दुनिया की नजरों से छिपा कर रखने का ढब नहीं दिया! क्यों कोई छीन लेगा उससे उसके चुने हुए को ऐसे फिक्रमंद लम्हे नहीं दिये! क्यों कैसे बचा कर रखा जाय उस चुने हुए को अपने पास साबुत, ऐसी उधेड़बुन में डूबी बेनींदी रातें नहीं दीं!

वह पीछे नहीं मुड़ी बल्कि उसने कदम बढ़ाने शुरू कर दिये पीछे की तरफ। बिस्तर तक पहुँच कर उसने अपनी आँखें बंद कर लीं। क्या उसके कुँवारे अतीत में कोई था, पति के सिवाय! वह उस आदमी की शक्ल अपने सामने उकेरे जाने के बिंदु तक अपने अतीत में वापस गयी। पर किसी की तलाश पूरी होनी तो दूर, शुरू तक नहीं हो पा रही थी। कारण कि अतीत का वह हिस्सा एक काले डॉट में सिमट कर बैठा था, जिसमें से किसी भी कम साँवले, साँवले या गोरे को बीनना मुश्किल था। असंभव की

हद तक। उसके अतीत के सबसे पिछले पन्ने पर उसे विदा करते माता पिता और फिर पति नया घर आदि आदि ही अंकित था। उसके पीछे का पन्ना था ही नहीं कुछ भी। अगर जिंदगी ने उसे भी चयन का मौका थमाया होता तो क्या वह अपने पति को ही चुनती!

उसकी साँसें तेज तेज आने जाने लगीं। एक साधारण साँस की जगह में ठुँसी हुई पाँच छह साँसें। आतीं। जातीं। एक दूसरे पर चढ़ी चढ़ी। बझी बझी। इस आवाज को सुनते हुए वसुंधरा कार्णिक के बालों की जड़ों का पसीना पिघलने लगा और वह झटके में चालीस पचास न जाने कितने साल पीछे चली गयी। कमरा यही रहा होगा या जो भी रहा हो फर्क क्या! वह बैठी थी तब भी ऐसे ही आँखें मूँदे या पता नहीं कैसे भी। घूँघट माथे तक था या ठुड्ढी के अंगुल भर नीचे जैसा भी। बल्कि सब कुछ था - नहीं था के बीच का, पर आवाज यही थी। चढ़ी चढ़ी। बझी बझी। जबकि किसी ताजा दुल्हन की साँसों की आवाज ऐसी निर्ल्लज नहीं होनी चाहिए, बल्कि उसकी साँसों की तो आवाज ही नहीं होनी चाहिए।

एक पति जैसे किसी ने दुल्हन की चौकी को पकड़ा। लाल रंग के घूँघट वाली औरत के हाथ साड़ी के भीतरी रास्तों से अपनी जाँघ पर या कि पैरों पर कहीं भी गये और उसने उस जगह को दाब कर अपनी साँसों के बहाने कुँवारपन के विराटतम भय पर काबू पाने की कोशिश की। वह सफल या असफल होती इस प्रयास में कि इससे पहले उसका घूँघट उलट दिया गया। अच्छा हुआ। उसके भय की उम्र बिना किसी भूमिका के घट गयी। जो भी होना था, जल्दी हो जाय जैसा कुछ।

दुल्हन की आँखें, जो घूँघट के उठ जाने के पहले खुली थीं, बंद हो गयीं। फिर खुलीं। मायके की सुहागिनें हड़बड़ी में बताना भूल गयी थीं कि आँखों का क्या करना था उस वक्त। बहरहाल बता भी देतीं तो क्या! उसके धौंकते सीने के आगे आँखों की भूमिका गौण थी। जो पति था, उसने संयमी पति की परम्परा पर चलते हुए दुल्हन के हाथों को अपने हाथों में उठा लिया। वहाँ, उस कमरे में तभी जो कुछ भी हो रहा था, उसकी टेक दुल्हन की साँसें ही थीं। चाहे वह पति का पास खिसकना हो, हाथ उठाना हो या कि उसके पास खिसकने में चौकी का चरमराना हो! या कमरे के एक कोने में धान के ऊपर धरे कलश के अगल बगल चूहों का दौड़ना हो! कुछ भी सब कुछ।

पति ने दूसरे डेग में उसके हाथों को अपने होंठों से दबाया। तीसरे डेग में दुल्हन की ठोढ़ी को पकड़ कर उठा दिया और उसके गालों को हल्के से छुआ। फिर चौथे डेग में वह अभी बुदबुदा कर कुछ बोलना ही चाहता था कि दुल्हन ने जोर से आँखें खोल दीं

और भय की लाल मुंडेर से पीछे की तरफ छलाँग लगाते हुए साँसों की आखिरी टेक पर घिघियायी - जल्दी जल्दी कीजिये!

वसुंधरा कार्णिक धड़ाम से बिस्तर पर गिरी। उसकी जिंदगी में वाकई सब जल्दी जल्दी ही तो हो गया। उसने तकिये को इतनी जोर से दबाया कि दाँतों के कोर में कपास का स्वाद तिर गया। इतनी जल्दी जल्दी कि अब वक्त बीते रुक कर किसी को खोजना असंभव। उसने तकिये पर घिस घिस कर सेंध मार चुके कपास को मुँह से बाहर निकाला।

सुबह की रोशनी तिनके की तरह आकर उसकी आँखों में पड़ी। वह आँखें मलते हुए सरपट बैठ गयी। तो पिछली रात आखिरकार सो पायी वह! वसुंधरा कार्णिक की पूरी दिनचर्या दिन का पूरा गणित आरंभ से ही गड़बड़ा गया था। वह हड़बड़ी में एक ही चप्पल पहन कर पूरे घर भर में बदहवास घूम आयी। घर एकदम स्थिर था। इवा कार्णिक के कमरे में आने पर एक उप दरवाजे के पीछे से पानी के गिरने की आवाज आती थी। वसुंधरा कार्णिक बाथरूम के दरवाजे के बाहर से अहकान कर पीछे लौटने को मुड़ी कि उसके रास्ते में उसका अक्स पड़ गया।

ड्रेसिंग टेबुल के दराज खुले थे। उसकी नजर आईने में अपने चेहरे पर पहले, ड्रॉवर से झाँकते फेयरनेस क्रीम की ट्यूब पर बाद में पड़ी। उसकी आईने वाली तस्वीर तो पर्याप्त गोरी थी, उसे क्रीम की कोई जरूरत नहीं थी। फिर भी। उसने क्रीम को ड्रॉवर से उठा लिया और अपनी साड़ी के पल्लू में दुबका कर कमरे तक ले आयी। ट्यूब को छिपाने की एक महफूज जगह उसे पलंग के मैट्रेस के नीचे पायताने हासिल हुई, जहाँ से कितनी भी उकट पुकट विकट तलाश के बाद भी इवा कार्णिक उसे बरामद न कर सके।

दिन। बारह बजे की तरफ से ढलकती घड़ी की छोटी सूई। पिउन की मार्फत विक्रम आहूजा तक सूचना आयी कि कोई उससे मिलने आया है। स्टाफ रूम की ओर संदेशवाहक की उँगली। वह दरवाजे की ओर वाली दीवार से पीठ सटाये बैठी थी।

'यहाँ?' ऊँचे कंधे वाले आदमी के चेहरे पर खीझ उग आयी और उसने दबे स्वर में बात को रफा दफा करने के इरादे से एक बार फिर फुसफुसा कर कहा - 'यहाँ कहाँ?'

'जहाँ भी आप चाहें।'

'क्या मतलब है? यहाँ कहाँ?' उसने कोई सुने तो सुने वाली बेपरवाह चीख में कहा।

वह सकपका गयी भीतर से।

'आपको बना रही थी। डिज्नीलैंड घुमा देंगे?'

'स्कूल?' उसने शक्की पुतलियों से पूछा।

'मैनेज कर लिया है।'

'इजा?'

'सोयी होंगी।'

'ये सब इतना क्राइम तुम्हारे दिमाग में आता कहाँ से है?'

'कल रात में ही सोच लिया था।'

'बस्ता उठाओ और लौटो स्कूल।'

उसके एक किसी आज्ञाकारी हाथ ने सकपका कर अगले ही पल बस्ता उठा लिया।

'टिफिन यहीं छोड़ जाना।'

उसके उसी हाथ ने बस्ते को वापस सोफे पर छोड़ दिया, सामने वाला मुलायम पड़ चुका था ये सूँघ कर।

'एह! गो!' वह फिर सख्त हो गया।

वह बैठ गयी। उसने गोद में बैग रख कर लंचबॉक्स निकाला और उसे बगल की कुर्सी पर रख कर वह उठ गयी। जाने के लिए। वह मुड़ गयी। वाकई जाने के लिए। उसने कदम बढ़ा लिए। जा चुकने के लिए।

'तुम्हें बना रहा था। लेती जाओ लंचबॉक्स!'

वह मुड़ी। उसने टिफिन को उठा कर बस्ते में ठूँस लिया।

'बैठो यहीं। चलता हूँ।'

डिज्नीलैंड में हर चीज के दाम उसने पूछे। बताये गये दाम की तिहाई भर कीमत में उस चीज को खरीद लेने को वह अकड़ गयी। खींचतान में दाम तिहाई के आसपास ही कहीं तुड़वा कर उसने अचानक मन पलट लिया और अगली दुकान की ओर बढ़ गयी। स्कर्ट, कान के बुंदे, कोल्हापुरी चप्पलें, कपड़े की बैग्ज, अचार, पाचक, कील ठोकने का स्टैंड तक। सारे झूलों पर भी चढ़ी वह। अकेले अकेले। तमाम तरह के ओल झोल स्टॉल पर के मौज, पाचक के स्टॉल पर हर तरह के पाचक को चुटकी चुटकी चख कर एक को भी न खरीदने की बेपरवाही - सब में वह अकेली थी। पर हर मोलभाव में अपनी जीत हो चुकने के बाद बगल वाले की आँखों में देखने के उल्लास में, किसी भीड़ भरे स्टॉल में धक्के के आवेग में अपने पैर को उठा कर बगल वाले के पैर को कुचल देने की धींगामुश्ती में, झूले से उतरती भीड़ के बीच वह ऊँचे कंधे को खोज सके उस सहूलियत के लिए ऊँचे कंधे वाले आदमी के खुद ही उसके सामने खड़े हो जाने की तत्परता में वह अकेली नहीं थी।

'मैं आइसक्रीम ले आऊँ एक अपने लिए एक आपके लिए?' - सवाल के समानांतर ही उसका एक हाथ आगे बढ़ गया। इस हाथ पर विक्रम आहूजा को पैसे रख देने थे आइसक्रीम के। यह तय नहीं था पहले से, पर हाथ उसके, जेब में घुस गये। वह पैसे बटोर कर चली गयी। वह अकेला था अब। क्यों था वह! इस मेले में! टिकट की लाइन में, धक्का खाते स्टॉलों पर, झुमके बालियों के काउंटरों पर भले ही पीछे की तरफ खड़ा, और अभी आइसक्रीम के इंतजार में पिघलता हुआ सा। उसकी धड़कनें एकाएक नुकीली होकर सन्नाटे को चुभने लगीं।

घास पर कानी उँगली भर का हरा कीड़ा रेंग रहा था। ऐसा कीड़ा किस सब्जी से निकलता था अमूमन उसने याद करने की कोशिश की, पर धुँधलाया सा भी कुछ स्पष्ट नहीं हुआ। कोई जानी पहचानी हवा पसीने के ठीक ऊपर से होकर गुजरी, पर वैसे झोंके किस मौसम की निशानी सहेजे चलते हैं अपने साथ, वह ठीक पहचान नहीं कर पाया। उसके कंठ के आसपास हर तरफ खूब सूखा पड़ा था। पर उस प्यास की प्रजाति कौन सी है, वह समझ नहीं पाया। वह उठ कर खड़ा हो गया। उसने आसपास देखा। एक दौड़ता चक्कर नजरों का। लड़की नहीं थी कहीं। वह भाग सकता था वहाँ से खूब तेज तेज।

आइसक्रीम एकदम सख्त थी। कहीं उमस का एक रत्ती तक नहीं पड़ा हो जिस पर। उसकी ठीक बगल वाली आइसक्रीम पर लड़की के निचले दाँतों के दो निशान पड़ चुके थे, पर वह हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था उस सख्ती पर जीभ तक फिराने की।

आइसक्रीम से भाप उठ रही थी और लड़की उसे फूँक फूँक कर खा रही थी दत्तचित्त। भागने को वह अभी भी भाग सकता था आइसक्रीम फेंक फाँक कर।

लड़की लकड़ी के दुबले पतले स्टिक को उलट पुलट कर चाट रही थी। दूध चीनी और चॉकलेट का फ्लेवर पुँछ गया था उसके ऊपर से और लकड़ी का अपना फीका स्वाद भीतरी खोलों से उभर कर बाहर झाँकने लगा था। लड़की ने ऊब कर कहा - 'वहाँ कॉरनेटो भी मिलता था पर मेरे हाथ में उतने पैसे नहीं थे, इसलिए इसे लेना पड़ा।' ऊँचे कंधे वाला आदमी, जिसकी स्टिक पर अभी आइसक्रीम की एक मोटी दरकती परत चढ़ी हुई थी, हिला नहीं उसकी बात से रत्ती भर भी।

'अगर मेरे पास ज्यादा पैसे होते तो मैं उसे ही लेती।'

ऊँचे कंधे वाले आदमी ने तत्परता से टूट कर गिरते हुए आइसक्रीम के एक मोटे टुकड़े को बीच राह ही मुँह में लपक कर गिरने से बचा लिया।

'ज्यादातर मैं कॉरनेटो ही खाती हूँ।'

ऊँचे कंधे वाला आदमी जेब से रुमाल निकाल रहा था। उसे शक था कि उसकी नाक के उभरे सिरे पर कोई हिस्सा दूध की सफेदी का या चॉकलेट के भूरेपन का लगा जरूर था।

'वहाँ बहुत भीड़ है। मैं जब तक लाऊँगी आपकी ये आइसक्रीम खत्म हो जायेगी तब तक। लाइये न फिर से पैसे।'

दुबारे से - वह अकेला था अब। उसने अपने स्टिक से उस कीड़े को उठाया घास के बीच से बीन कर। कीड़ा पहले अगला हिस्सा आगे बढ़ाता था, फिर देखा देखी पीछे पीछे और पीछे का हिस्सा भी दुलक दुलक कर बढ़ता था और वह एक कदम आगे रेंग जाता था। अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं था। वह दौड़ कर भागना न चाहे न सही, रेंग रेंग कर भी भागता तो तय था कि लड़की के लौटने तक उसका नाम निशान कुछ भी नहीं होता उस जगह। उसके हाथ काँप गये और कीड़ा स्टिक से फिसल कर नीचे गिर गया। वह झुक कर उसे खोजने लगा। वहाँ से न भाग पाने का बहाना उसे मिल चुका था!

इवा कार्णिक इस हुनर को साध चुकी थी जिसमें कि कलियों की लंबी कतार के ऊपर से दौड़ कर गुजरना था इस करतब से कि एक कली तक मसलने न पाय। बिना चखे, सही चीनी की चाय वह बना सकती थी। बिना कहे वह प्यास लगने के पहले इजा को ग्लास भर पानी दे सकती थी। बिना नागा वह मुहल्ले के सारे कुत्तों को रोटी खिला सकती थी। बिना वजह वह अपनी सारी कॉपियों पर सुंदर सुंदर जिल्द चढ़ा सकती थी।

उसका मन हर दो दो दिन पर एकदम विपरीत दिशा में पलट जा रहा था। उसके लिए कभी घर की पूरी दीवार ही दरअसल झिर्री थी, जिससे कि झाँक कर गहरे शाम के होने का इंतजार किया जा सके या कभी उसका मन एक हाथ में ब्रश और दूसरे हाथ में पेंट लेकर पूरी दुनिया पर न न न न लिखता चला जा रहा होता। कभी ऐसा अहसास कि क्रीम वक्त के पहले ही उसे तेज तेज गोरा बनाती जा रही है, कभी ऐसा कि दिन दिन बढ़ते साँवलेपन को आलू छीलने वाले औजार से त्वचा की परत छील कर ही विलगाया जा सकता है अपने आप से आदि। इस तमाम उलटन पुलटन के बाद मन इस बिंदु पर आकर स्थिर हो गया था कि अब अपनी चीजों पर उसका अख्तियार नहीं रहा कोई। वह एक ऊँचे कंधे वाले आदमी के पास अपने बाकी के सपने गिरवी रख कर आयी थी।

विक्रम आहूजा बहुत धीमे धीमे खरचना चाहता था रात को। उसके शरीर पर पसीना था और कंठ के निचले हिस्से में बहुत सी प्यास जमा थी। वह आँखें मूँदता था तो पुतलियाँ चुभती थीं। वह आँखें खोलता था तो पलकें अपने को एक दूसरे के पीछे छिपाने लगती थीं। वह जब साँसें लेता था तो फेफड़े की माँसपेशियाँ विद्रोह कर देती थीं और जब वह साँसें छोड़ता था तो उसके आसपास की हवा उस छोड़ी हुई साँस को अपने में शामिल करने से इनकार कर दे रही थी। वह करवट बदलता था तो नीचे की जमीन अपने पैर तेजी से पीछे की ओर खींचने लगती थी और जब चित्त लेटता था तो असामान उसके सीने पर अपने दोनों पंजे धँसा कर झुक जाता था पूरी ताकत से।

फिर भी वह रात को सँभाल सँभाल कर खरचना चाहता था। अँधेरे में जिस चीज को उसकी उँगलियाँ छू आयी थीं, क्या वह वही थी जिसे पहले भी कभी छू चुका था वह! दुनियादारी के उजाले में बात को सामने से बुहार बुहार कर हटाया जा सकता था पर अँधेरे की चकाचौंध में उमरदराज से उमरदराज सच अपने को नंगा कर देने को बेताब हो जाता है। फिर उसके सच की तो उमर हिचकी जितनी थी या एक बार की साँस को छोड़ चुकने के बाद अगले दान में ली जाने वाली साँसों की तलाश जितनी।

उन्हें अपने ऊपर का चोंगा फेंकने में वक्त ही कितना लगता! हैरानी की बात थी कि कपड़े पहने हुए सच से भागता हुआ एक इंसान नंगे सच के सामने होने पर भी अँधेरा ही चाह रहा था। वजह यही कि इस सच की बेपरदगी में एक कोमलता थी और सुबह बिस्तर पर पहली रोशनी पड़ने के साथ जैसे ही वह सच कपड़े पहन लेता, उसमें दुनियादारी भर मिलावट घुस जाती और वह दुनिया, दुनिया जैसी लगने लगती।

वसुंधरा कार्णिक के लिए यह एक दुर्लभ मौका था। दस्तक की आवाज पर दरवाजे के उस पार वाले को पहचान लेने की अपनी क्षमता को परखने का, क्योंकि दिन के कुबेरे में विक्रम आहूजा की आमद अप्रत्याशित थी। पर बदकिस्मती कि दरवाजा खुला हुआ था। दृश्य यह था कि दरवाजे के उस पार सब्जीवाली अपना बाजार समेट रही थी और वसुंधरा कार्णिक घर के भीतर चेंज टटोल रही थी। लिहाजा ऊँचे कंधे वाले आदमी का स्वागत दस्तक पहचान कार्यक्रम की जगह सब्जी वाली द्वारा अपनी दौरी दरवाजे के एक तरफ समेट कर उसके प्रवेश के लिए रास्ता बनाने के उद्यम से हुआ।

वसुंधरा कार्णिक ने उसे ड्राइंग रूम के बीचोंबीच देखा तो उसका अंकगणित बिसुर गया और वह दो रुपये के चार और एक रुपये के दो सिक्के मिल जाने के बाद भी साबुत सात रुपये खोज लेने में असफल रही और उसने सब्जी वाली को दस रुपये थमा कर घटी बढ़ी अगले दिन पर छोड़ दिया। सब्जी की टोकरी उठ गयी। सब्जीवाली के पीछे पलटते ही वसुंधरा कार्णिक का कंठ सूख गया। उसने एक कोई हाथ तो बढ़ाया पर आवाज ही नहीं निकली जो लौटा सके सब्जीवाली को।

'कल की दोपहर मैं इवा के साथ था। हम डिज्नीलैंड गये थे।'

'हाँ मैंने अखबार में विज्ञापन देखा था। हफ्ते भर और चले शायद।'

'जाने के पहले आप से पूछ लेना चाहिए था।'

'मैं कहाँ जा पाती अब मेले में।'

'उसे ले जाने के पहले।'

'तुमने कुछ सोच कर ही नहीं पूछा होगा।' वसुंधरा कार्णिक के चेहरे पर अजीब सी धूप निकली उसकी नाक और दाहिने गाल के ठीक बीच में से।

'मैंने सोचा ही तो नहीं।' विक्रम आहूजा की आँखें चुंधिया गयीं।

'तुम तो जाना भी नहीं चाह रहे होगे। ये लड़की ही बड़ी जिद्दी है।'

'मैं चाहता तो जाने को आसानी से रोका जा सकता था।'

'अगर इसके माँ बाप होते तो मैं इतना नहीं सोचती इसके बारे में।'

'आप कहें तो मैं आज से ना।'

'नहीं।' वसुंधरा कार्णिक का 'नहीं' सामने वाले के ना पर चढ़ गया।

'तुम्हें क्या लगता है पढ़ने में कैसा करेगी ये?'

'पढ़ ही जायेगी।'

'तुम कभी कभी बगैर इत्तला किये उसका इम्तिहान ले लिया करो। किसी भी विषय का।'

'हूँ।'

'कभी क्या बल्कि आज शाम से ही शुरुआत कर दो।'

'हूँ।'

'शुरुआत न हो सोशल सांइस से कर दो। पिछली दफा सबसे कम अंक उसी में मिले थे। तो तय रहा आज सोशल साइंस की परीक्षा।'

'जी।'

'क्या वो तुम्हें पसंद करने लगी है?'

'मैं उसे रोक दूँगा।'

'और वो रुक जायेगी!'

'मान जायेगी।'

'तब तो और भी खतरनाक।' बहुत तेजी से वसुंधरा कार्णिक की कनपटी से उठी बादल की किसी लपट ने धूप को डुबो दिया।

'देखिए।' विक्रम आहूजा ने गला खखार कर फुसफुसाहट को स्पष्ट किया - 'अगर वह कुछ ऐसा सोचती भी होगी तो वह मिनट भर का खिंचाव होगा, जिसे तोड़ना आसान है।'

'क्या तुमने पहले कभी उसे रोकने के बारे में सोचा था?'

'उसने मेरी आँखों के आगे कभी कदम नहीं बढ़ाया कि रोका जा सके उन्हें।'

'देखना उसका मन बहुत कोमल है।'

'मैं देखूँगा।' विक्रम आहूजा का मन उलट गया। वह बार बार भूल जा रहा था कि वह अपनी पहल पर आया था। वह यह इंतजार करने लग जा रहा था कि कब वसुंधरा कार्णिक की बात खत्म हो और कब वह उसे जाने को कहे पर इसके पहले कि एक बार फिर वह भूल जाय, मन उलट जाने के बिंदु पर ही उसने अपने को उठा लिया उस घर से।

वसुंधरा कार्णिक का मन हल्का था कि उसका संशय बँट गया किसी के साथ। साथ ही मन के भीतर एक गोल सी जगह घेर कर बैठी ग्लानि भी थी। वह जानती थी कि इवा कार्णिक के पाँव उठाते ही उसके कदमों को रोक देने की बात तय हो चुकी थी। और इस तयशुदगी में उसकी आधेआध की हिस्सेदारी थी। एक बड़ी चोट खाने के पहले इवा कार्णिक के इर्दगिर्द वह इतनी सारी छोटी छोटी खुशियाँ ला धरना चाहती थी कि लड़की को ठेस का अहसास हुए बगैर जख्म मिल जाय। मतलब! जख्म का मिलना तय था! वसुंधरा कार्णिक वहाँ से सीधे उठ कर लड़की के कमरे में गयी। पहला संयोग कि लड़की सोशल सांइस की किताब को अपने साथ स्कूल न ले गयी हो और दूसरा कि बेतरतीब बुक रैक में कम से कम श्रम से उसे ढूँढ़ लिया जा सके! पर किस्मत! उसने पहली किताब जो उठायी वह समाजशास्त्र की ही थी!

वसुंधरा कार्णिक का काम ठीक तरह बुक रैक के आगे बैठने के पहले ही खत्म हो गया। वह बिना ठीक तरह से बैठे ही उठ सकती थी वापस। किताब उठा कर वह लपट की तरह उठी और मुड़ी ही थी कि उसकी चोरी पकड़ी गयी। लड़की खुली आँखों से उसे देख रही थी। उसके दोनों होंठों के बीच थोड़ा सा फाँक था, जिससे हँसी, अपनी देह समेट कर आसानी से आ जा सकती थी। उसकी बायीं बगल की लट ठुड्डी की लंबाई तक लटक गयी थी। लड़की पलकें झपकाये बगैर ताक रही थी और ऐसे ही ताकती रहने वाली थी बरसों तक। वसुंधरा कार्णिक का कंठ सूख गया और उसने

किताब को आँचल में छिपा लिया। उसने साफ साफ देखा कि बुकशेल्फ के ऊपर रखे फोटो फ्रेम के पीछे से लड़की की मुस्कान सूत भर और फैली।

इजा कहलाने वाली स्त्री आँचल में हाथ छिपाये छिपाये अपने कमरे में भाग गयी कपड़े की आलमारी तक। यह जख्म देने के लिए औजार को पैना करने की शुरुआत थी।

बहरहाल लड़की के लिए खुशी जुगाड़ना किचन से कोई ललचाऊ खुशबू उठाने जितना आसान था या कि चौक के डिपार्टमेंटल स्टोर से कुरकुरे लाने जितना या कि उसकी नयी ड्रेस से मेल खाता क्लिप या हेयरबैंड लाने जितना। दूसरे मोर्चे पर इवा कार्णिक भी एक दिन पहले की दोपहर में तपे हुए एक धारदार छल की भरपाई में अपने आप को विनम्र और विनम्र बना कर पेश कर रही थी। उसके फैले होंठों की हँसी मन की उदारता को सँभाल नहीं पा रही थी और जहाँ कहीं उदारता छलक जा रही थी। खाना खा चुकने के बाद जब वसुंधरा कार्णिक उसके रूखे बालों पर हाथ फिरा कर जड़ों में तेल लगा देने को उद्यत हुई तो उसने अपने रोम रोम को सतर्क कर दिया। वह तत्क्षण इस प्रस्ताव के आगे न बोलना चाहती थी। पर उसके चाहने के पहले ही जुबान ने अपने अभ्यास के मुताबिक 'ठीक' कह दिया।

इवा कार्णिक की मुड़ी मुड़ी लटों की जड़ में इजा की उँगलियाँ सहरने लगीं। इवा कार्णिक ने इजा के घुटनों में अपना चित्त माथा फँसा दिया। खून बेतहाशा माथे में इधर उधर दौड़ने लगा और उसकी आँखें मुँदने लगीं। वसुंधरा कार्णिक ने मुँदती मुँदती पलकों को कोई बाधा न पहुँचे इस आस में उँगलियों की छुअन को और धीमा कर दिया। उसे लग गया था कि जख्म दिये जाने के पहले सुख के सामान लड़की के लिए अपने हाथों से जुटा चुकी थी वह। उसकी आत्मा से बोझ छँट चुका था। उसकी खुद की भी पलकें मुँदने लगीं लड़की की पलकों की जुगलबंदी में। लड़की ने धीमे से कहा - 'मैं कल दोपहर सर के साथ घूमने गयी थी डिज्नीलैंड।'

वसुंधरा कार्णिक के दो हाथ लड़की के बालों में सहर रहे थे, अलावा इसके दो हाथ और भी, जो आकस्मिक पलों के लिए छिपे थे, जिन्हें कि बढ़ा कर वसुंधरा कार्णिक ने लड़की के उघड़े हुए को ढक लेना चाहा।

इवा कार्णिक ने दोहराया **-** 'सर के साथ।'

इजा के संबोधन से पुकारी जाने वाली स्त्री ने कहा **-** 'चल हो गयी मालिश सिर की। बगैर झूठ बोले तेरा एक भी दिन चैन से गुजरता नहीं**?**'

'सोलह आने इजा।'

'हाँ सोलह आने! चल मैंने यकीन कर लिया।'

'सच में इजा।'

'मुझे उठने तो दे! सुन लिया।'

इवा कार्णिक ने अपने होठों से उसके हाथों को छुआया एक पल के लिए और कहा - 'एह! शाम का पहला झूठ! मालिश करके मुझे नींद में ऐसा ठेल दिया था कि ठीक से निभा नहीं पायी।' बहुत महीन सा आँसू उसकी आँखों में सूख गया। पर उसकी परछाईं तेजी से नजरें बचाते बचाते भी इजा की आँखों में दिख गयी उसे।

वसुंधरा कार्णिक ने अपने को दूसरी तरफ पलट कर लड़खड़ाते हुए जोड़ा - 'नींद! भूल जा नींद को! सुबह तेरे सर घर आये थे। पढ़ाई में तेरी लापरवाही से बहुत परेशान दिखते थे। और आज वे तेरी सरप्राइज टेस्ट लेने वाले हैं।' लड़की की तरफ मुड़ चुकी वसुंधरा कार्णिक की संयत गोल गोल पुतलियों में अब आँसू की छाया की जगह भेद भरी खुसफुसाहट दिखायी पड़ रही थी - 'उसके आने में अभी घंटे दो घंटे बचे हैं। जा तैयारी कर ले!'

'किस चीज की?' जवाब में आयी लड़की की फुसफसाहट जगह जगह से उघड़ी हुई थी।

'सोशल साइंस की।' वसुंधरा कार्णिक ने होंठों की बिदबिदाहट को देख कर पढ़ी जा सकने वाली फुसफुसाहट में सस्पेंस से परदा उठा दिया।

लड़की दौड़ कर अपने कमरे में भागी। वसुंधरा कार्णिक ने गौर किया कि उसके हाथ खुद ब खुद जाकर आँचल के पीछे छिप गये थे। वह चौंकी किताब को क्या अभी तक आँचल के पीछे ही छिपाये बैठी थी वह! जवाब की तसल्ली में हाथ खाली खाली आँचल से बाहर आये सही, पर उनके पसीने पर किताब के निशान अभी भी मौजूद थे। दूसरे कमरे में तेज उकट पुकट मची थी। वसुंधरा कार्णिक चुप रह सकती थी। दबा सकती थी सरप्राइज टेस्ट की बात अपने तक। फिर भी उससे ऐसा हो गया।

लड़की अपने कमरे में तबाही मचा कर उस तक आयी - 'आप झूठ तो नहीं बोल रहीं! मजाक?'

'नहीं! क्या हुआ?'

'बुक मिल नहीं रही सोशल साइंस की।'

'खोजो! वरना तुम पढ़ कैसे पाओगी!' उसने कहा था। कहा था या कहना चाहा था! शायद उसने कहा था, तभी लड़की ने कहा - 'क्या खोजूँ?'

लड़की वापस अपने कमरे में भाग गयी। वसुंधरा कार्णिक आकर ड्राइंग रूम में बैठ गयी। उसकी एड़ियाँ काँप रही थीं। उसने एड़ियों को उठा कर गोद में डाल लिया। वह अपने धड़ को सोफे पर पूरी तरह उठंगा कर बैठी थी। उसके भीतर लड़की से रत्ती भर भी कम उथल पुथल नहीं मची थी। दूर दूर तक कोई खुशी नहीं थी न कोई रोमांच ही। वह अपने आप को पूरी सज धज से नीचे गिरता हुआ देख रही थी। बावजूद इसके उसने अपने को बचाने का कोई प्रयास नहीं किया।

वह अपने पैरों के कंपन को गिनती हुई बैठी रही। कुछ घड़ी बाद उसे ऐसा लगा मानों अलावा पैरों के कोई और आवाज आ नहीं रही। बगल के कमरे से आती आवाज थम चुकी थी! वह सरपट उठी और बगल के कमरे तक पहुँची। झाँक कर देखा उसने। लड़की सो रही थी या ऐसा मान सकते हैं कि अपने बिस्तर पर लेटी थी। बहुत शांत सी। चित्त। साँवली। आँखों को साँवले हाथों से ही ढाँप कर।

लड़की का जन्म सातवें महीने में हो गया था। वह एकदम लिकलिक कमजोर सी थी। उसे रूई के फाहे में सहेज कर पाला गया इस तल्लीनता से कि वह गोरी है कि साँवली किसी के ध्यान में आया ही नहीं। इस सवाल से सामना सबसे पहले लड़की का हुआ और उसकी पहल पर वसुंधरा कार्णिक को इस सच का भान हुआ।

वसुंधरा कार्णिक पस्त चाल लौट आयी। उसने अपनी आलमारी से किताब निकाला और उसे ले जाकर लड़की के बुकशेल्फ में रख आयी। वह सुनियोजित ढंग से जमीन को देखते हुए गयी थी और जमीन को देखते हुए ही लौटने की बात भी तय थी इसीलिए ऐन उसके मुड़ते वक्त बुकशेल्फ पर रखी तस्वीर ने ही अपने आप को गिरा लिया जमीन पर। इजा कहलाने वाली स्त्री की आँखें छन्न से उस पर पड़ीं। लड़की टूट कर भी मुस्कुरा रही थी। वसुंधरा कार्णिक यह भूल गयी कि उसे काँच चुनने की बजाये आवाज को चिनगा कर चिल्लाना था - यहीं बुकशेल्फ में तो रखी है किताब ठीक से ढूँढ़ तक नहीं सकती! उफ! या ऐसा ही कुछ भी!

इवा कार्णिक को सत्रह सवाल मिले थे, जिनके जवाब छोटे छोटे होने थे। एक से दो डेग वाले। जवाब की कंजूसी ही वजह कि वह लंबे जवाब लिखने के बहाने देर तक कलम चलाते रहने का भ्रम भी नहीं रच पा रही थी। ऐसे में ज्यादा से ज्यादा वह कलम की नोंक को कागज पर टिका कर सोचने का दिखावा भर कर सकती थी, जो उसने किया। ऊँचे कंधे वाला आदमी अखबार पर झुका था। इजा सोफे पर बैठी थी चुपचाप से छत को ताकती - इवा कार्णिक ने पुतली और पलकों के बीच वाली जगह से महसूस कर लगा लिया यह हिसाब।

कलम की बजाये उसके हाथों में अगर पेन्सिल होती तो उसकी नोंक को सुरीली करने के बहाने से वह वक्त को कुछ आगे खींच कर ले जा सकती थी। लेकिन किसके लिए? वक्त को काट लेना उसकी जरूरत थी कि जवाब को कटने से बचा लेना! ऐसे वक्त में उसकी आँखों में आँसू आने चाहिए थे बेबसी के स्वाद वाले, पर आँसू आये नहीं। उसने आँखें बंद करके दोहराना शुरू किया एक किसी सवाल को मन ही मन इस उम्मीद से कि जवाब न सूझने की बेबसी में आँसुओं को आँखों तक का रास्ता दिखाया जा सके। पर हुआ क्या!

अभी सवाल अपने को तीन चार बार ही दोहरा पाया था और आँसू ने आँखों तक की अपनी यात्रा शुरू भी नहीं की थी कि चार अक्षर का जवाब भयानक आभा के साथ कौंध गया। इवा कार्णिक ने आँखें खोलीं और कॉपी पर पहला जवाब लिखा और आँखें वापस मूँद कर दूसरे सवाल को मन मन दोहराना शुरू किया लेकिन इस बार सवाल को तीन चार बार दोहराने की नौबत नहीं आयी। उसके काफी पहले ही सही जवाब की जगह एक आँसू पलकों के पीछे जाकर चिपक गया। इवा कार्णिक को इतनी जल्दी प्रतिक्रिया की उम्मीद न थी। पलकें हड़बड़ा कर खुल गयीं और उसने उस बूँद भर आँसू को अपने हिस्से के जवाब की राह देख रहे सवाल के बगल में लाकर धर दिया। इवा कार्णिक को ऐसा लगा मानों उसकी साँसें सीने में समा कर रह नहीं पायेंगी अब आगे। उसने अकबका कर बिना वक्त गँवाये बाकी के बचे रह गये पंद्रह सवालों के बगल में भी आँसुओं को धर दिया और कॉपी परीक्षक की ओर बढ़ा दी।

परीक्षक ने चार अक्षर के एक जवाब के आगे सही का निशान लगाया और बाकी की खाली जगहों को एक सरसरी निगाह से खँगाल कर कॉपी बंद कर दी। उसे तेज आवाज में लड़की की ओर देख कर चिल्लाना था, पर वह कंठ से भीतर की ओर जाने वाली आवाज में वसुंधरा कार्णिक की ओर देख कर घिसघिसाया - 'पुअर स्कोर!' वसुंधरा कार्णिक जो छत की ओर देख रही थी, छत की ओर देखते देखते ही समझ

गयी कि बात उससे कही गयी थी और जवाब में विक्रम आहूजा से बोल पड़ी - 'तुमने सुना! सुबह सब्जी वाली बता रही थी कि ट्रक मालिकों की हड़ताल के कारण अगले छह सात दिन भी सब्जियों के भाव चढ़े रहेंगे!' ऊँचे कंधे वाले आदमी ने कॉपी खोल कर उसके आगे बढ़ा दी - 'शी हैज स्कोर्ड ओनली।' वसुंधरा कार्णिक बिच्छू का डंक खाकर उसकी बात को अधूरेपन में काटती हुई उठी - 'तुम पढ़ायी जारी रखो। मैं देखती हूँ कि खाने में क्या बनाना है।'

वसुंधरा कार्णिक किचन का रास्ता भटक कर लड़की के कमरे में जा पहुँची। वहाँ थरथर काँपने के अलावा एक दूसरा काम जो उसने किया वह था बुकरैक से सोशल सांइस की किताब को निकाल कर तसदीक कर लेना कि वाकई उसने जीते जागते ऐसा छल किया या सोते सपने में ऐसा कुछ देखा भर उसने! किताब के कवर ने उँगलियों की कोर को छूकर बता दिया कि छल वाकई उससे ही हुआ था।

उसने अपने होठों को बायीं हथेली से ढक लिया इस मुस्तैदी से मानों उसके जबड़े अचानक दाँतों पर से अपनी गिरफ्त ढीली करने पर आमादा हो गये हों और वह उन्हें हर हाल में गिरने से बचा लेना चाह रही हो। उसके इस प्रयास से बिखरते दाँतों को तो फिर भी सँभाला जा सकता था पर एक तेज हूक को सँभालना उस जतन के बूते का भी न था। उँगलियों के पोरों से रिस कर आवाज कहीं कहीं बेपर्दा हो गयी थी, जिसे दूसरी हथेली से दबा कर कमरे की जद तक ही रोक लेने में कामयाब हो गयी थी वह।

दूसरे कमरे में सोफे पर बैठी इवा कार्णिक इस तरह बेपर्दा होती चीजों को दमसा कर रखने का ढब नहीं जानती थी। वह ढुलढुल आँसुओं के झोंके में सुबकने लगी। ऊँचे कंधे वाला आदमी सिर झुकाये लगातार उसी कॉपी के खुले पन्ने को देखता था। लड़की की हिचकी की ताल पर उसकी पलकें फड़फड़ाती थीं। वह परख रहा था कि कहीं उसने जरूरत से ज्यादा कठिन सवाल तो नहीं रख दिये लड़की के सामने! कहीं मन ही मन वह चाह तो नहीं रहा था कि लड़की के अंक कम आयें और उसे शर्मिंदा होना पड़े। उसने दुबारा से पढ़ा तो सवाल सारे उसे आसान ही लगे। अगर वह वाकई वैसा नहीं चाहता था तो चुप तो करा ही सकता था लड़की को। इवा कार्णिक ने अपने आप चुप हो जाने के प्रयास में जोरदार सुबकी ली।

ऊँचे कंधे वाले आदमी ने अपनी तरफ से कोई प्रतिक्रिया न दिखाने के प्रयास में उस इकलौते सवाल को पढ़ा, जिसका जवाब लड़की ने सही लिखा था। सवाल को पढ़ने पर और उससे सटे जवाब को भी पढ़ने पर उसे लगा कि सवाल कठिन था, जवाब भी। वाकई! लड़की उधर उपसंहारसूचक दबी छिपी सिसकियाँ ले रही थी, इधर

परीक्षक उसी सवाल के ऊपर नीचे वाले तमाम सवालों को एक एक कर कठिन सवालों के खाने में फेंकता जा रहा था। जैसे ही लड़की आखिरी हिचकी लेकर सामान्य हुई, वह इस निष्कर्ष पर पहुँच चुका कि उससे चूक हो गयी थी और सवाल दरअसल कठिन थे। उसने कहा -'फिर से सवाल लिखो दूसरे! ये तो बहुत कठिन थे!' लड़की के होंठों ने एक शानदार झूठ का मौका नहीं गँवाया। वह मुस्कुरायी। उसकी आँखों में देख कर विक्रम आहूजा के लिए यह यकीन करना कठिन हो गया कि लम्हे भर पहले आती सिसकियों से इस लड़की का कभी कोई संबंध रहा होगा! उसके भीतर कहीं कुछ चिनगा - कहीं उसे खबर तो नहीं थी अपनी इजा और ट्यूटर के बीच सुबह हुई मंत्रणा की! और शाम भर वह जो सब कुछ कर रही थी वह झूठ तो नहीं! ढोंग!

वसुंधरा कार्णिक को ऐसा लगा मानों उसके जीवन से सारे स्वर निकल चुके हों और केवल ठस्स व्यंजन वर्ण बचे रह गये हों जिनके बगैर जीवन का कोई सार्थक मतलब न निकले, केवल ठूँठ संकेत खड़े हों जहाँ तहाँ। और उसका एक हाथ जिस संकेत को उघाड़ रहा होता है, दूसरा उसे ही ढक रहा होता है। अकेले लेटे रहने पर भी वह फैसला नहीं कर पा रही थी कि आखिर वह है किस तरफ! अपने पक्ष में? या अपना ही प्रतिपक्ष? और उसका अपना पक्ष ही कौन सा? लड़की की खुशी का पाला या उसके जख्म का पाला! या कि एक अलग ही खेमा, जिसमें सिर्फ कुंठाएँ थीं ईर्ष्या थी तिकड़म थे।

रात घुटनों तक नींद में धँस चुकी थी कि एक चूड़ी भर टूटन ने वसुंधरा कार्णिक को उठा कर बैठा दिया। उसने अपनी दाहिनी कलाई को उठा कर देखने की कोशिश की। अँधेरे में बगैर चश्मे के भी साफ साफ दिखा कि चूड़ियाँ थीं नहीं वहाँ। पर चूड़ियों के पहनाये जाने के निशान फिर भी रह गये थे उधर। और वह दर्द भी, जो कलाई में पहनायी जाती एक चूड़ी के टूटने से जन्मा था, उस आवाज के साथ जिसने उसे जगा दिया था। और सबसे बढ़ कर चूड़ियाँ पहनाने वाले हाथों का खुरदुरा स्पर्श जो सबसे साफ दिखायी दे रहा था। किसके हाथ! उसके पति के नहीं! वह उछल कर बिस्तर से कूद गयी। अगले ही पल कमरे में रोशनी थी। उसने अपनी कलाई को गौर से देखा, जो ऊपर से नीचे तक खाली थी। बेदाग भी। बायाँ हाथ उस पर फिराया उसने। टूटी चूड़ी का दर्द अब भी महसूस हुआ कहीं।

तो क्या कोई पिछला अध्याय था उसके अतीत के तहखाने में जिसने दिन रात दिमाग पर जोर डालने के बाद उसके सपने में ही सही, अपनी उपस्थिति दर्ज करानी शुरू कर दी थी! उसके जीवन में भी कभी कोई था जिसकी शक्ल नहीं कोई, पर जो

था! वह नंगे पाँव लड़की के कमरे तक भाग कर गयी। उसे लगा कि उसके आस पास बल्कि उसके जीवन में ही कहीं बस लड़की ही बची रह गयी थी जिसके साथ वह अपने सुदूर अतीत से उड़ कर आया खुशी का एक पन्ना बाँट सके, जिस पर लिखा तो कुछ भी नहीं था, फिर भी जिसे पढ़ा जा सकता था। लेकिन एक कमरे के उजाले को लाँघ कर दूसरे कमरे के अँधेरे में दाखिल होने के रास्ते के बीचोंबीच ही उसे अहसास हो गया कि वह जो करने जा रही थी, उस काम को दरअसल बिना किये ही लौट आना था उसे बीच राह में। इवा कार्णिक के कमरे के मुहार से वापस लौटते समय उसकी चाल में एक इतराहट थी, जो अकसर चलते हुए पेटीकोट के तेज तेज फड़कने से सूँघी जा सकती है।

वसुंधरा कार्णिक गमले की मिट्टी को खुरपी से उलट पुलट रही थी। उसके किसी एक हाथ में सोने की एक पतली चूड़ी थी, जिस पर गीली मिट्टी के दाग उछल उछल कर लग गये थे जहाँ कहीं। लड़की उसकी बगल में जाकर बैठ गयी। उसने किसी बहाने से अपने हाथ गमले की कोर पर रखे। आईने में जो दिखता था उस पर एक तुलनात्मक अध्ययन की मुहर भर लगा लेना चाहती थी वह चोरी वाली सरसरी निगाह से। दोनों हाथों में दूरी थी फिर भी चमड़े के अंतर की पहचान करना वाकई नजर भर का काम ही साबित हुआ। हताशा ने पलक भर के वक्त में इतनी सधी तेजी से उसे अपनी गिरफ्त में लिया कि चोरी की बात को भूल कर वह बेलाग पूछ बैठी - 'मेरा रंग ऐसा कब तक रहेगा?'

वसुंधरा कार्णिक ने चौंक कर पहले उसे देखा, पीछे दोनों हाथों को। तीन अलग अलग भाव क्रम से उसके मन में आये। सबसे पहले ममता, उसके पीछे अपराधबोध और उसके भी पीछे कुटिल सी खुशी। उस तीसरे भाव के चंगुल में फँस कर उसने साँस छोड़ी - 'जन्म का रंग साथ कैसे छोड़ सकता है!'

लड़की ने अपने हाथ खींच लिए। वह बगैर वक्त गँवाये अपने कमरे की ओर भाग गयी। वसुंधरा कार्णिक ने बहुत लंबी सी गंभीर साँस ली। उसका मन हलका हो गया और वह मिट्टी को दुगुने उत्साह से उकटने लगी। ऐसे छलके उत्साह से कि पौधों की नाजुक जड़ों को खुरपी की धार से बचने के लिए अपने आप में अपने आपको छिपाना पड़ा। फिर भी गमले कम पड़ गये। और उत्साह बचा ही रह गया। पड़ोसियों के गमले का भी विकल्प था पर विवेक ने उत्साह की कलाई दबा दी। वसुंधरा कार्णिक सजग हुई अवश्य पर उत्साह में फीकापन नहीं झलका। उसने साड़ी का पल्लू कमर से निकाला और गमले पर पोतने के लिए गेरुआ रंग खरीदने वह चौक तक चल दी।

दुकान से दो कदम पीछे रह जाने पर उसे खयाल आया कि पैसे लेना वह भूल गयी। फिर भी उसका उत्साह नहीं कुम्हलाया। वह घर तक लौटी वापस। दुबारे के रास्ते में उसकी मुट्ठी में गेरू के लायक पैसे थे। गेरु के खरीदे जाने तक, घर वापस आने तक, उसके पानी में घुलाये जाने तक, गमलों की रँगाई शुरू किये जाने तक उत्साह की मात्रा टस से मस नहीं हुई। पर अभी एक तिहाई ही गमले रंगे गये कि अचानक उसका उत्साह खत्म हो गया। ब्रश चलते चलते अचानक थम गया। रंगे जाते हुए गमले में तीन चार अंगुल भर ही जगह बची रह गयी थी बेरंगी। पर ब्रश जहाँ रुक गया था उसके आगे एक कदम भी चलने से उसने इनकार कर दिया। वसुंधरा कार्णिक ने बहुत प्रयास किया - अपने मन को ठुकठुकाया। हार कर उसे उलट भी दिया कहीं किसी कोने में दुबके रह गये तीन चार अंगुल भर उत्साह की तलाश में, पर मन एकदम खाली था। बूँद भर की भी गुंजाइश नहीं थी। वसुंधरा कार्णिक ने हार कर अधरंगे गमले के आगे से अपने को उठा लिया। ब्रश पीछे जमीन पर ही पड़ा रह गया।

वसुंधरा कार्णिक अपने कमरे में आकर उकड़ू बैठ गयी कि लेट गयी। कुछ घड़ी ठहर कर किचन से बरतन के निकाले जाने की, खाना परोसे जाने की, परसन लिए जाने की, थाली वापस धोये जाने की, बरतन रखे जाने की छिटपुट आवाजें आती रहीं। वसुंधरा कार्णिक हिली नहीं। लड़की के कमरे से कपड़े बदलने की, दो दो चोटियाँ गूँथने की, ट्यूब को खोज कर ट्यूब तो खो चुकी है यह याद करने की आवाजें आती रहीं। वसुंधरा कार्णिक हिली नहीं। ड्राइंग रूम से गहरे गहरे कदमों से किसी के चलने की, घर का दरवाजा खोलने की, बाहर निकल कर फिर से उसे सटा देने की आवाजें आती रहीं। वसुंधरा कार्णिक बस हिली नहीं।

वह उछल कर बिस्तर से उतर गयी। बिना क्रीम वाले साँवले चेहरे में लड़की के विदा ले चुकने के बाद वसुंधरा कार्णिक ने लपक कर दरवाजा बंद कर दिया। उसके पास एक खतरनाक इरादा था। उसने आईने को अपने आगे खड़ा कर दिया। उसने अपने बालों से जिम्मेदारी के भार से अर्धवृत्ताकार हो चुके क्लिप को निकाल फेंका। बालों में बेमौसम एक तिरछी क्यारी निकल गयी और वसुंधरा कार्णिक अपनी आँखों में आँखें डाल कर सरपट दो चोटियाँ गूँथती चली गयी।

अगली छापामारी में साड़ी के पिन को निशाना बनाया गया। साड़ी को नाभि के पास से एक बार पकड़ कर बेदखल कर दिया जाय तो साड़ी लगभग खुली चुकी मान ली जा सकती है। वसुंधरा कार्णिक ने अपने चालीस साल के अनुभव की बिना पर साड़ी

को सबसे कम समय में पूरी तरह खोल देने का शार्टकट अपनाया। वह साड़ी के फंदों को तड़पा कर इवा कार्णिक की आलमारी तक दौड़ गयी।

लड़की के तूफानी स्कर्ट्स, जींस और नाइटसूट के बीच से कुर्ता सलवार का जोड़ा बीनना था कठिन पर उसकी पकड़ में एक सलवार की मोहरी आ ही गयी। सलवार में साढ़े तीन मीटर कपड़े दुबके पड़े थे। पर उसकी जोड़ का पटियाला कुर्ता वसुंधरा कार्णिक को अपने में कभी भी समा नहीं पाता। एक दूसरे, जिप से खुल सकने वाले कुर्ते की जिप खोले खोले वह गले के रास्ते प्रवेश तो कर सकती थी पर कमर के ऊपर आकर यहाँ भी बात अटक जाती थी। वह वापस उसी रास्ते कुर्ते से बाहर आ गयी और उसने अपने शरीर के अगले हिस्से के आगे कुर्ते को बस खड़ा कर दिया और उसके पीछे से झाँक कर आईने को इस भ्रम में डालने के इरादे से देखने लगी मानों उसने कुरता सच का पहन ही रखा हो! इस भ्रम के सीने पर दो चोटियाँ डुलाते हुए अपने आप को अतीत के तहखाने तक खींच ले जाकर अपनी खोज को जारी रखने का जुनून, अपनी दयनीय पहचान को टुकुर टुकुर तकने के अभियान में बदल गया।

शाम गहरा गयी थी और लड़की अभी तक लौटी नहीं थी। वसुंधरा कार्णिक को ऐसे वक्त में घर के दरवाजे पर होना चाहिए था चहलकदमी करते हुए और उसकी धड़कन को सीने से बाहर आकर धड़कना चाहिए था अपनी गति की सीमा लाँघ कर। पर वर्तमान में वसुंधरा कार्णिक अँधेरे कमरे में लेटी थी और उसका दिल भी टिम टिम किस्म का धड़क रहा था। अचानक कमरे की बत्ती जली और वसुंधरा कार्णिक की पुतलियाँ बहुत धीमे धीमे मुड़ीं उस तरफ, जहाँ से आवाज आयी - 'आप ऐसे लेटी हैं! मेरे कमरे में!'

एक सवाल यहाँ किया जा सकता था - 'तुम भीतर कैसे आयी!'

'दरवाजा खुला था। मैं अंदर आ गयी।'

एक सवाल यहाँ किया जा सकता था - 'कहाँ थी इतनी देर तक?'

'स्कूल के बाद सर के साथ चली गयी थी।'

एक सवाल यहाँ किया जा सकता था - 'किससे पूछ कर?'

'आप इतनी चुप क्यों हैं? तबीयत।'

एक सवाल जो यहाँ नहीं किया जा सकता था - 'शाम हो गयी क्या?'

'रात होने वाली है।'

वसुंधरा कार्णिक बहुत आहिस्ता से उठ कर बैठ गयी। लड़की उसके पास आकर बैठ गयी - 'दरवाजा खुला कैसे रह गया।'

'भूल हो गयी होगी! तेरी ट्यूशन का वक्त।'

लड़की ने चहक कर कहा - 'वे अब नहीं आयेंगे। कल सुबह वे शहर छोड़ कर जा रहे हैं।'

एक सवाल जो यहाँ कतई नहीं किया जा सकता था - 'नहीं आयेंगे! मतलब?'

लड़की ने पलकें झपकायीं - 'यहाँ नहीं आयेंगे!'

एक सवाल जो यहाँ नहीं किया जा सकता था - 'कैसे नहीं आयेंगे!'

'जैसे नहीं आया जाता है वैसे ही।'

एक सवाल जो यहाँ कभी नहीं किया जा सकता था - 'मेरा क्या होगा।'

लड़की ने मुस्कुरा कर कहा - 'आप दो चोटियों में अच्छी लगती हैं।'

वसुंधरा कार्णिक के होंठों के बीच फाँक बन गयी और उसके हाथ चोटियों की जड़ तक जाकर बंधन को खोलने लग गये। होंठों की फाँक में तसल्ली थी कि पंद्रहवें सोलहवें सत्रहवें साल से खौफ का काँटा निकल गया था। चोटी की जड़ में हूक थी कि काँटे की वजह से उसकी सफेद जिंदगी में ईर्ष्या, तलाश, बेचैनी, दर्द के जो रंग आये थे, वे सब अब नेपथ्य में चले जायेंगे फिर से और हलचल की अगली तलाश तक वापस जिंदगी सफेद होगी। कोरी।

लड़की मुस्कुरायी हालाँकि गैर तैलीय त्वचा पर हल्की मूँछों का मौसम था और छनछनाहट होती थी होंठों के ऊपर, मुस्कुराने में। फिर भी। उसके होंठ कहते थे कि अब तक जो कुछ भी उसने कहा वह सिरे से सच था। लड़की की आँखों में पारदर्शी कुछ चमक रहा था। उसकी आँखें सुनती थीं कि होंठ जो कह रहे थे वह पाँव तक झूठ था।

रात अभी भी हल्की साँवली थी। वसुंधरा कार्णिक अभी भी खड़ी थी, पर अपने कमरे की खिड़की से लग कर। और बहुत घड़ी बाद उसे होश आया कि वह हाथ खिड़की से

बाहर फैलाये खड़ी थी। यह उसके जीवन की सबसे भयानक नाटकीय मुद्रा थी, पर इसकी सुध आने पर भी वह अपने हाथों को वापस नहीं खींच सकी। हाथ अकड़ गये थे कि मच्छरों ने आगे बढ़े हाथ पर धावा बोल दिया था। कुछ भी। फिर भी।

बल्कि वह रात को जागी ही थी, यह तक यकीन से नहीं कहा जा सकता। उस रात का यकीन बगल के कमरे से आते महीन पंद्रहसाला खर्राटे पर टिका था। जमाने बाद लड़की सो रही थी, जबकि वसुंधरा कार्णिक जाग रही थी या शायद सो नहीं रही थी। जो भी था, सुबह हो चुकी है यह सूचना रात को पहले पहल उसने ही दी।

और सूचना देने के फौरन बाद वह घर से बाहर निकल गयी। गंतव्य तक पहुँचने के पहले की उसकी उधेड़बुन एक असरकारी वाक्य तलाशने की थी, जिससे कि शहर छोड़ कर जाते हुए किसी व्यक्ति को रोक कर रख लिया जाय, पर वहाँ पहुँचने के बाद की उसकी उधेड़बुन उससे भी ज्यादा असरकारी वाक्य तलाशने की थी, जिससे कि कुछ भी छोड़ कर कहीं भी जाने का कोई ख्याल न रखने वाले आदमी के आगे अपनी इस कुसमय उपस्थिति को जायज साबित किया जा सके।

इतवार के दिन वह चाहती थी कि लड़की को दिन में भी पढ़ाया जाय जैसा कुछ। वसुंधरा कार्णिक ने गौर किया था कि लड़की के नाम से जरा सा भी संबंध होने पर झूठ अपने को खुद ब खुद गढ़ लेता था। लड़की के नाम का जिक्र आते ही उसकी मुट्ठी बँध गयी। मुट्ठी के साथ धोखा हुआ था!

विक्रम आहूजा जाग कर उठा था। वसुंधरा कार्णिक ने घर पर नजर दौड़ायी। घर को 'कहीं जाना है' की खबर तक नहीं थी। हालाँकि वह ड्रांइग रूम में थी और उस कमरे में ऐसा कोई सामान अमूमन हुआ नहीं करता था, जिसकी सज धज को घर के मालिक के पलायन का प्रतीक करार दिया जा सके। फिर भी उसने सूँघ लिया दीवारों से कि जाना वाना किसी को नहीं था। इतने के बावजूद भी उसने पूछ लिया - 'कहीं निकलना तो नहीं तुम्हें?'

विक्रम आहूसजा को भी कैसे तो लग गया कि उस सवाल का जवाब नहीं देने से भी काम चल जायगा उतने ही कदम, जितने कि जवाब देने से चलता।

विक्रम आहूजा को तुरत फिर से एक बार कैसे तो लग गया कि वह इतनी सुबह सुबह उसे अपने साथ ले जाने ही आयी है। वह चार उँगलियों की लचक से आगंतुक को बैठा कर अपने को तैयार करने भीतर की तरफ भागा।

वापसी के रास्ते में वह विक्रम आहूजा के आगे आगे खरहे की तरह फुदक रही थी। वह खूब गहरी गहरी साँसें ले रही थी और उसे लग रहा था कि रोज सुबह ताजा हवा में सैर न करके उसने कितने तो स्वास्थवर्धक पल गँवा दिये। अपार्टमेंट में नीचे बित्ते बित्ते भर की गुलदावदी पसरी थी। उन्हें भर आँख देख कर उसे अहसास हो रहा था कि उसने अपनी बागवानी में कोताही कर कितने तो बित्ते बित्ते भर के अचम्भे गँवा दिये। एक साँस में और एक नजर भर में इतनी चीजें गँवा देने के बाद भी वह खुश थी। वह साड़ी के फंदों के नीचे दोनों एड़ियाँ जोड़ कर और अँगूठे छितरा कर चल सकती थी या कि अँगूठे ही जोड़ कर और एड़ियाँ छितरा कर। उसने पीछे घूम कर कहा फिर से या पहली बार पता नहीं। कुछ भी। फिर भी उसने कहा - 'तुम्हें कहीं जाना तो नहीं था!'

जवाब जानने के लिए उसे कानों की नहीं आँखों की जरूरत पड़ेगी। वह जानती थी। उसने विक्रम आहूजा को न में गरदन डुलाते हुए देख लिया, तब आँखों को वापस मुड़ने की राह पर डाला उसने लगभग अपने आप को गिरा हुआ ही महसूस किया। विक्रम आहूजा ने कूद कर उसे सँभालना चाहा पर तब तक एड़ी मुड़ चुकी थी!

'क्या हुआ?'

'छल! क्या तुम भी इसमें शामिल थे!'

'जी?'

वसुंधरा कार्णिक ने सिर झुका लिया - 'कुछ नहीं। गड्ढा था।'

विक्रम आहूजा ने उसके चेहरे को पहली बार देखा खुलेपन में। उसे लगा वह किसी अजनबी भाषा में सरपट बुदबुदायी कुछ। विक्रम आहूजा ने आँखों को बंद कर फिर से खोला। उसे लगा कि हालाँकि सामने वाली स्त्री से पूछा नहीं गया उसके पहले के कहे का मतलब फिर भी वह गालों में गड्ढे धँसा कर मुस्कुरायी बस। उसने याद करने की कोशिश की कि उस स्त्री के गालों पर गड्ढे पहले कभी पड़ते भी थे क्या! पर जवाब में उसे आयरिश गड्ढों की गहरायी ही याद आयी केवल। उसने देखा वसुंधरा कार्णिक उससे फर्लांग भर आगे निकल चुकी थी। उसे लगा कि बादलों का एक गुच्छा बिना उसको छुए ऊपर से निकल गया।

अपने घर के भीतर घुसने के लिए वसुंधरा कार्णिक को दरवाजे पर दस्तक भी नहीं देनी पड़ी। परदा दरवाजे का, घुटने उठा कर लहरा रहा था। लड़की ड्रांइग रूम में

पार्टिशन के उस तरफ किताबें बिखरा कर अध्ययन कक्ष की परिकल्पना साकार किये तैयार बैठी थी। ऊँचे कंधे वाले आदमी को मालूम था कि उसे कहाँ बैठना है मंच पर। उसने बैठते ही सामने की किताब उठा ली। रोशनी का घेरा उन दोनों के ऊपर से उठ चुका था। वसुंधरा कार्णिक पार्टिशन के उस पार भीतर की तरफ बढ़ गयी।

उस पार कदम धरते ही दीवार मिल गयी, जिससे टिक कर नीचे नीचे और नीचे ढहना संभव हुआ। बैठते ही वसुंधरा कार्णिक का जूड़ा ढलक कर खुल गया पूरी तरह बाल की लंबाई में। परदों की ढँकास से आती अलसायी रोशनी में अंधकार का एक सुडौल वृत्त, उसके चेहरे की नाप जोख का, सामने खड़ा हो गया। वसुंधरा कार्णिक ने अपने डिम्हे के बंजर भूरेपन में उस वृत्त को देखा। आईने के सुकून से।

धोखा था यह! पर उस प्रजाति का जो खाये जाने के लिए ही बना था। अँधेरे के वृत्त में जो चेहरा दिखता था वह जवान था। वसुंधरा कार्णिक हड़बड़ा गयी। उसने दोनों हाथों से आईने को पकड़ लिया और उसे हिला डुला कर हर ऐंगल से सच को परखने लगी। पर सच वही था। जवान जवान और जवान होता जाता चेहरा, वसुंधरा कार्णिक के हाथों से हड़बड़ी में आईना छूट गया और उसने दोनों हाथों से अपने चेहरे को थाम लिया। पर आश्चर्य कि आईना टूटा नहीं! टूटा नहीं क्या वह गिरा तक नहीं! गिरा नहीं भी नहीं, बल्कि वह डिगा तक नहीं अपनी जगह से। वह टँगा रहा उसके चेहरे के सामने, जवान चेहरे के सामने।

वसुंधरा कार्णिक घसीट कर उसके और करीब सिमट आयी। इतनी कि उसकी नाक की नोक से आईने के उस पार वाले जवान चेहरे के गालों में गड्ढे पड़ जायें। पर हुआ उल्टा। आईने के भीतर की पलकें वसुंधरा कार्णिक के चेहरे पर लकीरें खींचनें लग गयीं। वसुंधरा कार्णिक ने उँगली के पोर से उन्हें मिटाने की कोशिश की पहले।

फिर उन निशानों को जिन्हें उम्र की पलकों ने उगा रखा था उसके अपने चेहरे पर। पर मिटने की बजाय वे लेपाने लग गयीं चेहरे पर। वसुंधरा कार्णिक को बल्कि ऐसा दिखा आईने में कि लड़की आ गयी वहाँ - अपनी उँगलियों से फेयरनेस क्रीम को चेहरे पर लपेसती लड़की।

वसुंधरा कार्णिक के सीने को बाँस की खपच्ची के तीखेपन से छीला किसी ने। उसे दुनिया अच्छी नहीं लगी। उसने दाहिनी हथेली को बढ़ा कर आईने के वृत्त को ढाँक दिया। उसका माथा नीचे झुका। नीचे उस रोज के टूटे फोटोफ्रेम के काँच का एक कोई

टुकड़ा रह गया था, उसके चुनने से बचा हुआ, कोई दूसरा वक्त होता तो वसुंधरा कार्णिक चौंक सकती थी। घर की सफाई में हुई अपनी इस चूक से। पर इस वक्त उस टुकड़े ने उसे समेट लिया। टुकड़े के तीखे कोरों से कटी तस्वीर में आड़ी तिरछी झुर्रियाँ और एक मोटी सफेद लट थी।

वसुंधरा कार्णिक ने आँखें बंद कर लीं। उसे चुनना था किसी एक को। गरदन उठा कर अँधेरे के वृत्त को या गरदन झुका कर काँच के टुकड़े को। उसे आगे जाना था कि लौट जाना था पीछे। वसुंधरा कार्णिक ने गरदन ऊपर उठा कर आँखें खोल दीं। पिछला अगले पर भारी पड़ा था। फैसला हो चुका था। पर अँधेरे का वृत्त नहीं था वहाँ कहीं भी! आईना नहीं था न शक्ल कोई! उसने भयानक चेहरे से दोनों हाथों को खोल कर घुमाया हवा में। तलाश। कहीं कुछ नहीं था। उसकी साँसों से एक तेज चिघ्घार की परछाईं निकली।

वह खड़ी हो गयी।

डगमग।

उसने डग बढ़ाये दोनों हाथों से।

फिर भी कुछ नहीं था।

कुछ था**!**

उसके पैरों में कोई टुकड़ा चुभा।

या ऐसा ही कुछ भी।

वह बिलबिला कर नीचे बैठ गयी।

उसका माथा घुटने पर ढुलक गया था।

उसने एक उँगली को जमीन पर डग भर आगे बढ़ा दिया किसी तीखे कोर वाले टुकड़े की तलाश में।

https://www.hindiadda.com/aisa-hi-kuchh-bhi/